श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष—७ सितम्बर—१९८८ अंक—

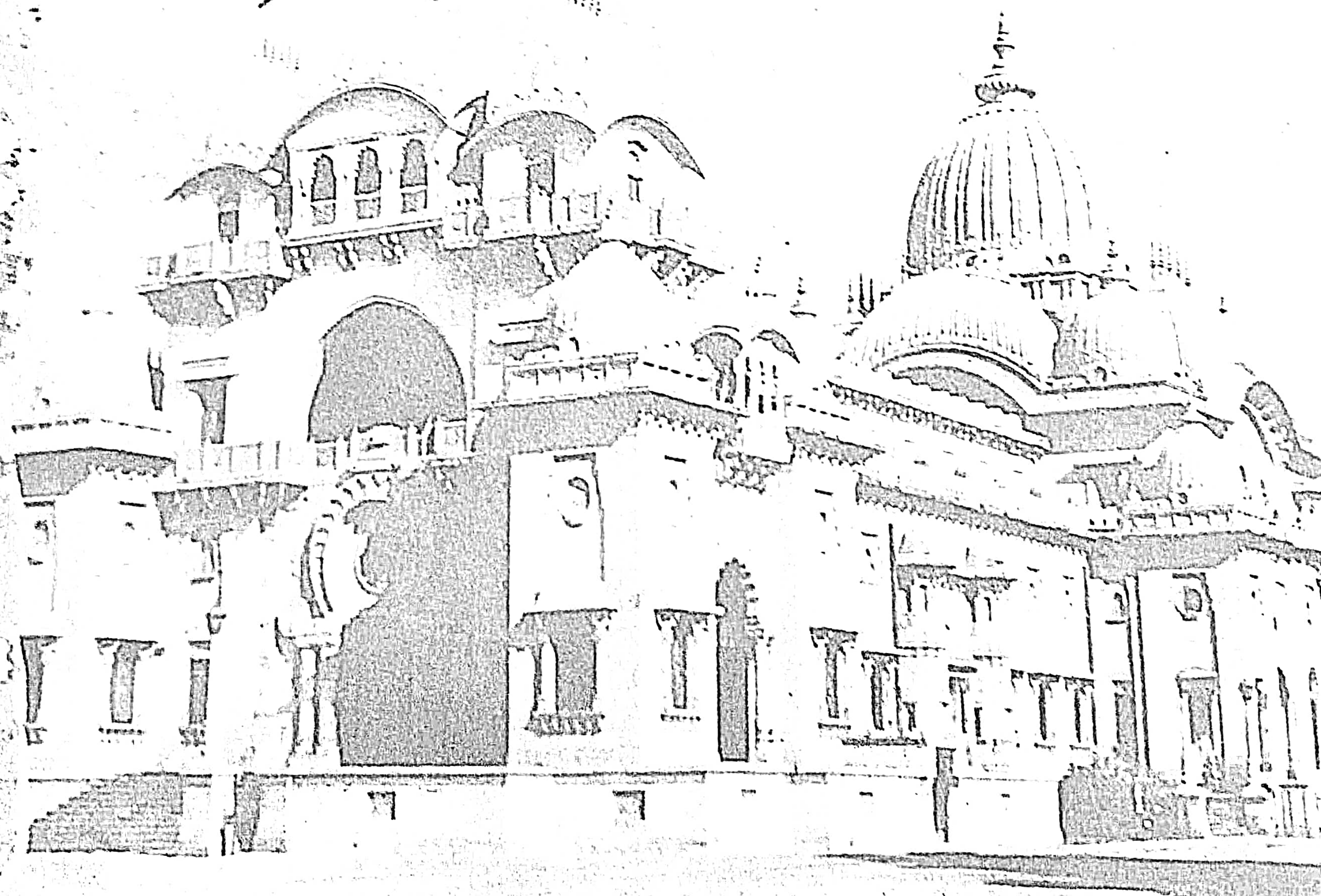

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. श्री० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. श्री० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री [illegible] कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमरावती ,,
४८. श्री० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द [illegible]निया—कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे—दमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० सी० नागोरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा—समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल—खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला—कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता—जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी—जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—एलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री बसन्त लाल जैन—कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस—दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ—हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, रांची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा

इस अंक में

पृष्ठ

१. श्री[illegible] ने कहा है
२. [illegible] — [illegible]ब्रह्मानन्द
३. व्यावहारिक और पारमार्थिक — स्वामी शुद्धानन्द
४. श्री[illegible] और राष्ट्रीय एकता — स्वामी लोकेश्वरानन्द
५. श्री[illegible] के दो रूप — स्वामी [illegible]शानन्द
६. ओंकार — [illegible]
७. मार्क्स के [illegible] — [illegible]
८. स्वामी अ[illegible] — श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—७ सितम्बर—१९८८ अंक—९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएं एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

किसी मछुए ने नदी में जाल डाला। जाल में बहुत-सी मछलियाँ फँसीं। कुछ मछलियाँ तो जाल में पड़कर एकदम शान्त, निश्चेष्ट पड़ी रहीं—उन्होंने बाहर निकलने की बिल्कुल कोशिश नहीं की; कुछ ने भागने की बहुत कोशिश की, काफी उछल-कूद मचाई किन्तु वे भाग न पाईं; और कुछ किसी तरह कूद-फाँदकर भाग निकलीं। इसी प्रकार संसार में भी तीन प्रकार के जीव होते हैं—बद्ध जीव, जो कभी मुक्त होने का प्रयत्न नहीं करते; मुमुक्षु जीव, जो बन्धन में होते हुए भी मुक्त होने का प्रयत्न करते हैं; और मुक्त जीव, जिन्होंने मुक्ति प्राप्त कर ली है।

(२)

अगर तुम साँप को पकड़ने जाओ तो वह तुम्हें अवश्य काट खाएगा; पर जो मन्त्र जानता है, उसके लिए यह अत्यन्त आसान बात है। वह यदि चाहे तो एक ही साथ सात साँपों को गले में लपेटकर खूब खेल दिखा सकता है! वैसे ही, विवेक-वैराग्यरूपी मन्त्र सीखकर यदि कोई संसार में रहे तो संसार की माया-ममता उसे बाँध नहीं सकती।

(३)

जिस प्रकार मक्खी अभी भगवान् के भोग पर बैठती है तो दूसरे ही क्षण सड़े घाव पर, उसी प्रकार विषयासक्त संसारी लोगों का मन भी अभी धर्मप्रसंग में रत रहता है तो दूसरे ही क्षण कामिनी-कांचन के भोग-सुख में मग्न हो जाता है।

भजन

दे दर्शन मोहे आज संवरिया
दरस बिना मन धीर न धरिया ॥

सांवरी सूरत दिल में समायी
खान-पान तन सुध बिसरायी
कल न पड़त निशि-दिन पल घड़िया ॥

जिमि चातक बरसा विनु होई
हरि के मिलन विनु मम गति सोई
तड़प रही बिनु नीर मछरिया ॥

अवगुण मेरे नाथ बिसारो
कर किरपा मम धाम पधारो
जनम जनम की मैं दासी तुम्हरिया ॥

ब्रह्मानन्द दरस की प्यासी
करुणा करो जान निज दासी
बार-बार यह मांग हमरिया ॥

—ब्रह्मानन्द (पुष्करवाले)

व्यावहारिक और पारमार्थिक

—स्वामी शुद्धानन्द
भूतपूर्व अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ व मिशन
अनुवादक : डा० कल्याण शंकर भट्टाचार्य,
कानपुर

संसारी और उदासी दो मित्र थे; दोनों में गहरा प्रेम था; एकदिन उद्यान में भ्रमण करते-करते दोनों मित्रों के बीच निम्नलिखित कथोपकथन हो रहा था। हम लोगों ने भी वहाँ टहलते हुए उनका वार्त्तालाप सुना। वार्त्तालाप कुछ नये ढंग का था; जैसी बातें आम सुनने को मिलती हैं; वैसी नहीं। पाठकवर्ग को इससे सन्तोष मिलेगा, इस विश्वास से हमने इसे 'उद्‌बोधन' में भिजवाया।

संसारी—तुमको सदा अन्यमनस्क क्यों कर देखता हूँ? किसी से बातचीत नहीं करते, सदा क्या सोचते रहते हो?

उदासी—'सत्य' क्या है यही सोचता हूँ; शिव क्या है यही सोचता रहता हूँ; सुन्दर क्या है यही सोचता हूँ।

संसारी—तुम्हारी बातों का कुछ अर्थ समझ नही पा रहा हूँ। सोच सोच कर किसी दिन पागल जैसे हो जाओगे।

उदासी—अर्किमिडीस विक्षिप्त हो गये थे; हमारे शिव भी बावरे से हैं। मुझे क्या डर है?

संसारी—तुम जैसे 'तत्त्वज्ञानी' की भाँति लग रहे हो। क्या कुछ तत्त्व मिला है? यदि पाये हो तो प्राप्त धन का हिस्सेदार हम लोगों को भी बनाना चाहिए। अकेले मिष्टान्न खाने से क्या होगा?

उदासी—यदि मिल जाये तो शायद दूंगा। पता नहीं दे पाऊंगा कि नहीं। सत्य, तुम कहाँ हो?

संसारी—अच्छा भी, चलो न; टहलते टहलते तुम्हारे मन में दिवारात्रि जो भावतरंग उठ रही है, उसी का कुछ हिस्सा हमें दे दो न—उसमें क्या दोष है?

उदासी दोष किसमें नहीं, पता नहीं है—तभी सत्य की खोज कर रहा हूँ। बेदाग वस्तु ढूंढ़ता हूँ—बेदाग कुछ मिलता नहीं। चाँद में कलंक है भोग से रोग होता है, मान से अपमान। मृत्यु-मृत्यु छाया के सदृश जीवन के पीछे' मंडरा रही है। प्रणय में विच्छेद है।

संसारी--तुम तो मालूम पड़ता है Pessimist निराशावादी हो गये। क्यों, क्या तुम नहीं मानते कि ईश्वर जो करता है वह सब मंगलमय होता है? कविवर Tennyson के उस अमर काव्य की याद नहीं आती?—

And yet I believe through the ages
an increasaing purpose runs;
And the minds of men are widened by the
process of the suns.

यह परछाई जो आज तुम्हें कितनी भीषण विभीषिका दिखाई दे रही है, कल समझोगे कि उसमें कितना मंगल उद्देश्य निहित था। यह सब दु:ख चिन्ता छोड़ दो, संसार है आनन्द धाम। यहाँ जो भी दुख देख रहे हो; वह भविष्य के कल्याण के लिए है।

उदासी—(आश्चर्य चकित) मंगल! कैसा मंगल?

संसारी—क्यों ? तुम जिसको अमंगल कहते हो, वह तो यह सब है—भूकम्प, प्लेग (हैजा), दुर्भिक्ष (भुखमरी), अग्निदाह आदि। अच्छा, इन सब प्रकोपों से अब अनेक लोग मर गये, अनेक परिवारों में हाहाकार तो मच गया, परन्तु देखो, उससे जब संख्या में कमी आ गयी, जगत का अधिकांश अनाज कम लोग उपभोग करने लगे। यह क्या ईश्वर का आश्चर्यजनक कौशल नहीं है ?

उदासी—उसका कौशल है, पता नहीं। परन्तु क्या वास्तव में उन्नति हुई ? लोक संख्या में कमी होने से फसल का उत्पादन कौन करेगा ? और इस भयंकर निष्ठुर प्रणाली से न गुजरने पर क्या मंगल नहीं हो सकेगा ? और 'मंगल' 'मंगल' जो कह रहे हो, उससे मेरा क्या सम्बन्ध है, यदि मेरे बचने की कोई आशा न हो ?

संसारी—क्रमोन्नतिवाद और क्या है ? क्रमशः क्रमशः यह समस्त दोष मिट जायेगा और सब निर्दोष हो जाएंगे। धरा स्वर्गधाम में परिणत हो जायगी।

उदासी—(हंसते हुए) कठोर वैज्ञानिक भी कल्पना में आबद्ध हैं। असम्भव आशा—धरा स्वर्गधाम हो जायगी।

संसारी—तुम्हारी चिन्ता प्रणाली में जैसा देख रहा हूँ जैसा तुम सब विषयों में दोष-त्रुटि निकाल रहे हो, उससे जान पड़ता है कि तुम किसी काम के न रहोगे।

उदासी—भाई, आशीर्वाद दो कि ऐसा ही हो।

संसारी—(आश्चर्य चकित होकर) वह क्यों ?

उदासी—किसी काम का न रहना तो बड़े सौभाग्य की बात है। परन्तु वह तो एक आदर्श है, वह तो परमार्थ है। वहीं जाना होगा पर कैसे जायें ? जा नहीं पा रहा हूँ। कोई जैसे पकड़ कर काम में जुटा देता है। कार्य, दोष के बिना नहीं होता।

संसारी—भगवान ने तो कहा है, कर्म यद्यपि दोष-युक्त है, फिर भी उसका त्याग न करो।

उदासी मैं तो छोड़ना चाहता हूँ, वह नहीं छोड़ता

संसारी—तब क्या करोगे ?

उदासी—क्या करूँ, यही सोचता हूँ। तब तक सोचूंगा जब तक यह खींचा-तानी रहेगी—यह व्यावहारिक पारमार्थिक रहेगा—जब तक यह देवासुर युद्ध रहेगा।

जब मैं सुन्दर हो जाऊँगा, तब सभी को सुन्दर देखूंगा। तृप्ति तो मेरे 'मैं' को लेकर ही है। 'मैं' को छोड़ कर क्या कहीं जा सकते हो ? तभी कुछ भी बेदाग नहीं दिखता—मैं बेदाग नहीं हूँ इसी कारण। कभी वैसा होगा भी कि नहीं ?

भाड़ में जाये जगत्। सब जैसे साधु हो गये उससे किसका क्या भला होगा ? बहुत सारे लोग जगत् का उपकार कर रहे हैं—करेंगे भी बहुत से लोग। क्या कुत्ते की दुम को सीधी कर सकते हो ? मन को ठीक रख सकते हो ? कह रहे थे कि काम के आदमी नहीं बनोगे—तुम लोग काम के बारे में क्या समझते हो ? कार्य का मूल कहाँ है जानते हो ? तुम लोग सत्य नहीं चाहते—चाहते हो कार्य। कार्य क्या है :—अपना और पांच जनों की शारीरिक पुष्टि के सब आयोजन !! शरीर जैसे अमर है। अनित्य अस्थायी जोड़ तोड़ करके कब टिका के रखोगे; थोड़ा साहसी बनो, देहादि भाव त्याग दो; थोड़ा सत्य भाषण सीखो; मन मुख एक रखो, प्राणों की वाणी बोलो; थोड़ा भाव के घर से चोरी करना छोड़ो।

'मैं मैं' 'मेरा मेरा' करके मर रहे हो, मैं क्या है उसे समझो, तनिक व्यावहारिक दृष्टिकोण त्याग कर पारमार्थिक दृष्टि का विकास करो। तब देखोगे कि व्यावहारिक कार्य भी कितना सुन्दर होता है। पहले अन्तर साफ करो, मन ठीक करो। पहले अपने आप को तैय्यार करो फिर महफिल में

उतरो। पहले खूँटा पकड़ो फिर घूमना प्रारम्भ करो। वैसा न करोगे तो गिर जाओगे, पहले पारमार्थिक कार्य सीखो फिर व्यावहारिक कथन कहना शुरू करो।

संसारी—व्यावहारिक पारमार्थिक क्या है ?

उदासी—जिसके बीच हम रह रहे हैं, वह व्यावहारिक है, जो कर रहे हैं वह व्यावहारिक है, जो देख रहे हैं वह व्यावहारिक है, जो सुन रहे हैं वह व्यावहारिक है, चल रहे हैं वह व्यावहारिक है। और जो होना चाहिए, जो होने से अच्छा हो सबसे उत्तम हो, जो निष्कलंक दोषस्पर्शहीन हो, वही पारमार्थिक है। हाय, कब पारमार्थिक धन से धनी होगे ?

संसारी—अच्छा भाई, आज कुछ व्यावहारिक की बड़ी जल्दी है, जाना होगा। समय उपरान्त फिर मिलेंगे।

शनैः शनैः पारमार्थिक में जाने की चेष्टा की जायगी। विदा।

उदासी—(शून्यमन से) विदा। सत्य तुम कहाँ हो ?*

---

*["अतीत की पृष्ठा से"—'उद्‌बोधन पत्रिका प्रथम वर्ष, १९ वीं संख्या पृ० ३१६-३१८ १८९८ ई०,, में प्रकाशित (पुनर्मुद्रित 'उद्‌बोधन' ९० वर्ष, ४ थी संख्या , पृ २८७—२८८, १९८८)]

श्रीरामकृष्ण और राष्ट्रीय एकता

—स्वामी लोकेश्वरानन्द

[स्वामी लोकेश्वरानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर कलकत्ता के सचिव हैं। बंगला मासिक उद्‌बोधन के फरवरी १९८७ के अंक में प्रकाशित उनके लेख का अनुवाद किया है—ब्र० बोधचैतन्य ने जो रामकृष्ण मिशन, नरोत्तम नगर में कार्यरत हैं—सं०]

अनेकों समस्याओं को लेकर हमारा देश अभी समस्याग्रस्त है। अभी आवश्यकता है इन सब समस्याओं के समाधान के लिए सम्मिलित प्रयास की। किन्तु इस सम्मिलित प्रयास के लिए जिस एकता-बोध की आवश्यकता है, वह हम लोगों में नहीं है। हम लोग एक देश हैं, एक राष्ट्र हैं, यह हम लोग भूलते जा रहे हैं। हम बंगाली है अथवा पंजाबी, हिन्दू हैं नहीं तो मुसलमान—यही है हमारा परिचय। अर्थात् भाषा, वर्ण अथवा धर्म की भित्ति के ऊपर हमारा परिचय है, भारतवासी कहकर नहीं। आज सबके मुँह से एक ही बात निकलती है—'राष्ट्रीय एकता संकट में है, देश के टुकड़े-टुकड़े हो सकते हैं।' स्वाधीनता के एक दिन पूर्व ही देश दो भागों में विभाजित हुआ था, वह दुःख, वह कष्ट हम अभी भी नहीं भूल पाये हैं। तब भी क्या हमने कुछ सीखा है ? फिर से वही साम्प्रदायिकता, संकीर्णता, दूसरों के प्रति घृणा अविश्वास हमारी राष्ट्रीय एकता को दुर्बल

कर दे रहे हैं। हम अपने सम्प्रदाय की आवश्यकताओं को बड़े रूप में देखते हैं, राष्ट्र की आवश्यकता को नहीं। तो फिर किस तरह हम एक साथ रह सकेंगे ?

एकता का अर्थ है 'एकात्मता'। प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या भारत में कभी एकात्मता थी ? जहाँ इतनी भाषाएं, इतने धर्ममत, सभी क्षेत्रों में इतनी विविधताएँ, वहाँ किस प्रकार एकात्मता संभव हो सकती है। कोई कोई इस प्रकार का प्रश्न भी करते हैं कि भारत मे क्या कभी राष्ट्रीय एकता विद्यमान भी थी ? अनेक छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर हमारा यह देश बना है। अशोक एवं अकबर के समय में इन विभिन्न राज्यों को एक केन्द्रीय शासन के अधीन लाने का प्रयास किया गया था किन्तु अकबर के बाद से केन्द्र दुर्बल हो गया और प्रान्तीय राज्यों ने स्वयं ही प्रधान होना शुरू कर दिया। एक देश, एक राष्ट्र -यह भावना किसी में भी नहीं थी। नहीं थी, यह जानकर ही अल्पसंख्यक अंग्रेज इतने बड़े देश को जीतने में समर्थ हुए थे एवं प्रायः २०० वर्ष तक वे शासन कर गये हैं। शासन किया है तो इसी देश लोगों के द्वारा ! कहाँ था देशप्रेम, राष्ट्रीयता बोध ? स्वामी विवेकानन्द ने इस देश के गौरवमय अतीत का स्मरण करा दिया है। भारत की सुप्राचीन, गौरवशाली भारतीय संस्कृति की महिमा जिस प्रकार पाश्चात्य देशवासियों को उन्होंने सुनाया उसी प्रकार भारतवासियों को भी सुनाया। पाश्चात्य देशों ने भारत का आविष्कार किया किन्तु उससे भी महत्त्वपूर्ण बात है भारत ने भारत को पहचाना। स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू-धर्म को प्रचारित नहीं किया, हिन्दू-संस्कृति को प्रचारित नहीं किया, प्रचारित किया है सम्पूर्ण भारतवर्ष की भावसम्पदा को, सम्पूर्ण भारतवर्ष के समस्त सम्प्रदाय के सम्मिलित प्रयास से विकसित संस्कृति को। इस संस्कृति में जिस प्रकार हिन्दुओं का अवदान है उसी प्रकार इस्लामिक, क्रिश्चियन, बौद्ध एवं जैन सम्प्रदायों का भी अवदान है। इसमें प्राचीन पुरुषों का अवदान है तो जो नवागत हैं उनका भी अवदान है। स्वामी विवेकानन्द ने ही हम लोगों की आँखें खोल दी। जिससे हमने अपने आपको पहचाना और पाश्चात्य के मोह का नाश हुआ। पाश्चात्य स्वर्ग नहीं है यदि स्वर्ग कहीं पर है तो भारत ही वह स्वर्ग है। इतनी परमतसहिष्णुता और कहीं भी नहीं है। इतनी उदारता, इतना प्रेम, एक दूसरे के प्रति इतनी श्रद्धा और कहीं भी नहीं है। स्वामी विवेकानन्द ने ही वास्तविक राष्ट्रीय एकता प्रदान की। पाश्चात्य देश में उनकी सफलता एक व्यक्ति या सम्प्रदाय की सफलता नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष की सफलता है, भारतीय संस्कृति की सफलता है। स्वामी जी को प्रेरणा से ही राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरुआत हुई, फिर स्वाधीनता आंदोलन की। किन्तु जो साम्प्रदायिकता भारत की भूमि में कभी भी विद्यमान नहीं था, चतुर अंग्रेज शासकों ने जाते-जाते उस साम्प्रदायिकता का बीज बोकर भारत को दो भागों में विभाजित कर दिया। अंग्रेज चले गये किन्तु साम्प्रदायिकता अभी भी अपना कार्य करती जा रही है। इसीलिए हम बंगाली हैं, नहीं तो पंजाबी, हिन्दू हैं अथवा मुसलमान, ब्राह्मण हैं नहीं तों शूद्र। हममें से कोई भी भारतवासी नहीं है। हम जो एक ही धागा में पिरोये गये विभिन्न प्रकार के फूलों की माला हैं, हम भूल चुके हैं। हमलोगों में अभेदबुद्धि प्रबल है एवं ऐक्य-बुद्धि प्रायः लुप्त होती जा रही है।

किन्तु भारत चिरकाल से विविधता का विश्वासी रहा है। एक लक्ष्य किन्तु पथ अनेक—इसी नीति को केन्द्र मानकर भारतीय संस्कृति की नींव बनी थी। मनुष्य कोई मिट्टी या लोहा तो है नहीं जो उसे एक ही साँचा में ढाल कर बनाया

जाय। प्रत्येक मनुष्य ही स्वतंत्र है। मनुष्य स्वतंत्र है तो उसकी रुचियां भी स्वतंत्र हैं। इसीलिए शिवमहिम्नः स्तोत्र में गाया है—रुचीनां वैचि-त्र्यादृजु कुटिलनापथ जुषाम्। नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव'। सभी का गन्तव्यस्थल है ईश्वर, उसी प्रकार जिस प्रकार सभी नदियों का गन्तव्य-स्थल है समुद्र। कोई भी नदी सीधी नहीं बहती, टेढ़ी-मेढ़ी ही बहती है। प्रत्येक नदी के रास्ते भी अलग-अलग हैं। उसी प्रकार मनुष्य भी एक रास्ते से नहीं चलता, सीधा भी नहीं चलता। प्रत्येक मनुष्य चलता है अपने स्वयं के रास्ते से जो रास्ता उसने अपनी रुचि के अनुसार ठीक कर लिया है। रास्ता जिसका जो भी हो किन्तु लक्ष्य सभी का एक है—ईश्वर। इस विश्वास से ही उत्पन्न हुई है इतनी विविधता। कितनी विचित्र है पोषाक पहनाव, कितने विचित्र हैं भाषा, धर्ममत, आकृति, आचार एवं व्यवहार ! एक ही परिवार के बीच कितनी विभिन्नताएं हैं, फिर भी आपस में टकराहट नहीं है, एक दूसरे के प्रति कितना आदर एवं प्रेम का व्यवहार है। राजा एक नहीं हैं और राज्य भी एक नहीं हैं। देश विभिन्न भागों में विभक्त है, फिर भी एक है। किसमें एक है ? जीवन दर्शन में एक है। क्या है वह जीवन दर्शन ? सत्य एक है, ईश्वर एक है—यही है जीवन दर्शन। इस जीवन दर्शन का उद्भव ऋग्वेद के एक मंत्र से हुआ है। वह मंत्र है —'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' इसी मंत्र के द्वारा भारत का इतिहास गढ़ा गया है और रचना हुई है भारतीय संस्कृति की। इसी मंत्र ने भारत की रक्षा की है। भारत के इतिहास में प्रेम की कहानी है, करुणा एवं मैत्री की कहानी अत्यधिक मात्रा में है। हिंसा एवं रक्तपात ? उसकी भी कहानी है भारतीय इतिहास में, किन्तु कम। सत्य के लिए, धर्म के लिए हिंसा में कभी आयी है। बाहरी शक्ति के आक्रमण के कारण भी हिंसा में कमी आयी है, और इस सहिष्णुता के लिए देश को महंगी कीमत चुकानी पड़ी है। बहुतों को लगता है कि यह दुर्बलता है फिर भी इस देश में कितने वीरों ने जन्म ग्रहण किया है। किन्तु उन लोगों के लिए देश बड़ा नहीं है, स्वयं की सुख-स्वच्छन्दता बड़ी नहीं है, बड़ी है नीति, धर्म एवं सत्य। सत्य के लिए वे सब कुछ त्याग कर सकते हैं किन्तु अन्य कुछ के लिए सत्य का त्याग नहीं कर सकते। उन लोगों के पास स्वदेश विदेश नहीं था, था वसुधैव कुटुम्बकम्। सब के भीतर एक ईश्वर विद्यमान है, नाम रूप जो भी हो वास्तव में हम सब एक हैं। जाति अलग है, परिवार अलग है, विविधता तो होगी ही क्योंकि यह स्वाभाविक है। विविधता या भिन्नता नहीं होने से व्यक्तिगत विकास संभव नहीं होगा। सभी क्षेत्रों में स्वाधीनता होनी चाहिए तभी विकास संभव होगा। भारत इस प्रकार की स्वाधीनता देने में विश्वासी रहा है और इसीलिए भारत में इतनी विविधता है, विचित्रता है। विभिन्ता है फिर भी संघर्ष नहीं। संघर्ष इसलिए नहीं है क्योंकि एक-दूसरे के बीच आदर एवं भाई-चारा का भाव विद्यमान है। एकता ही मुख्य है, अनेकता गौण। भारत की एकता आध्यात्मिक आदर्श में है, राज-नैतिक आदर्श में नहीं। जाति, भाषा वर्ण, पहनावा गौण है, मुख्य है स्वरूप। हम सभी का स्वरूप एक है, हम एक आत्मा हैं, यह एकत्वबोध ही हमारी एकता है। एक आत्मता (एकात्मता) का दूसरा नाम है—एकता ! यही एकता ही वास्तविक है एवं अन्य कोई भी एकता अवास्तवविक है। राज-नैतिक एकता एकता नहीं, सुविधावादियों का एक दल है। उसी प्रकार भाषा या धर्म की एकता कृत्रिम है; असार है, स्वार्थसिद्धि का उपाय मात्र है। एक मात्र प्रेम की एकता ही एकता है, एकात्मबोध की एकता ही एकता है। भारत इसी एकता को ही एकता मानता है। इसीलिए भारत ने विविधता का सम्मान किया है। पुराकाल में कितनी ही जातियाँ मातृभूमि से प्रताड़ित होकर भारत में आयीं एवं

भारत ने उन लोगों को आश्रय प्रदान किया। वे सम्मान सहित, अपनी परंपरा की रक्षा करते हुए भारत में रह रहे हैं। यहूदी, पारसी, ईसाई इसके उदाहरण हैं।

श्रीरामकृष्ण भारत की आत्मा हैं। एकता के प्रतीक हैं। वे सभी मत एवं सभी पथ की मिलनभूमि हैं। वे एक है एवं अनेक भी। कितनी विविधताएँ हैं उनके भीतर; वे ही स्वराट हैं, वे ही विराट हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—सभी धर्म एक आधार में हैं, वे सबके हैं सब उनके हैं। सभी ग्रहणीय हैं, त्याग करने योग्य कोई नहीं है। सभी रास्ते ठीक हैं क्योंकि सभी का अंत ईश्वर है। सभी रूप ही ईश्वर के रूप हैं, सब नाम ही ईश्वर के नाम हैं। इसीलिए सब के प्रति आदर एवं भाई-चारे का भाव है। भारतीय संस्कृति की यही विशिष्टता है और यही विशेषता श्रीरामकृष्ण की भी है, इसीलिए श्रीरामकृष्ण भारत आत्मा हैं, और इसीलिए श्रीरामकृष्ण विश्वव्यापी हैं! उनका जीवन एवं आचरण वैचित्र्यमय है—किन्तु उस वैचित्र्य के बीच एकता ही है उज्ज्वल और इसीलिए इतना प्रेम है, इतना अपनत्व बोध है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण के बताये मार्ग ही असल मार्ग हैं। विच्छिन्नता से भारत की एकता की रक्षा का एकमात्र पथ है—श्रीरामकृष्ण का पथ।

●

कृष्णाष्टमी के अवसर पर

श्रीकृष्ण के दो रूप

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

श्रीकृष्ण के जीवन एवं व्यक्तित्व के दो पृथक एवं स्पष्ट रूप हैं, जिन्हें 'गोपीजनवल्लभ' एवं 'गीता-गायक' नामों की संज्ञा दी जा सकती है। प्रथम रूप का वृन्दावन में तथा दूसरे का मथुरा तथा द्वारका में प्राकट्य हुआ था। स्वामी रामकृष्णानन्द इन दो रूपों को 'Pastoral and king maker' अर्थात् 'गोपबाल और राष्ट्र निर्माता' नामों से अभिहित करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने भी इन दोनों रूपों को पहचाना एवं स्वीकार किया है। श्रीकृष्ण के वृन्दावन रूप को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हुए स्वामीजी कहते हैं: "उनमें जिस उच्चतम रूप को हम प्राप्त कर सकते हैं, वह है वृन्दावन के गोपीजन वल्लभ। ये वही सरल श्रीकृष्ण हैं जो गोपियों के साथ क्रीड़ा करते थे: आहा! उनके जीवन का वह सबसे अद्भुत काल, जिसे समझना अत्यन्त कठिन है और पूर्णरूप से पवित्र एवं निष्पाप हुए बिना जिसे समझने का किसी को भी प्रयत्न नहीं करना चाहिये। सुन्दर वृन्दावनलीला के रूपक के माध्यम से अभिव्यक्त प्रेम के उस अत्यधिक आकर्षण एवं उच्चतम विकास को वही समझ सकता है जो प्रेम-मदिरा का पान कर प्रेमोन्मत्त हो गया है।" "कृष्णावतार का वही सार-सर्वस्व है।"

पार्थसारथी श्रीकृष्ण को स्वामी विवेकानन्द निम्न स्तर प्रदान करते हैं। "उस आदर्श प्रेमी से उतर कर हम गीता गायक के निम्नतर स्तर पर आते हैं।" "गीता के महान दर्शन की भी तुलना उस प्रेमोन्माद से नहीं की जा सकती। क्योंकि गीता में शिष्य को लक्ष्य की ओर धीरे धीरे बढ़ना सिखाया गया है।" "वे (श्रीकृष्ण) एक ही आधार में अद्भुत् संन्यास एवं अद्भुत् गृहस्थ दोनों ही हैं। उनमें अत्यद्भुत रजोगुण का प्राकट्य था और साथ ही साथ उन्होंने अद्भुत वैराग्य का जीवन यापन किया था। गीता को पढ़े बिना तुम कभी श्रीकृष्ण को नहीं समझ सकते क्योंकि वे अपने ही उपदेशों के मूर्त विग्रह थे। राज-सिंहासन त्याग कर वे कभी उसकी परवाह नहीं करते। भारत के उस महान नायक ने जिसके एक शब्द पर राजा-महाराजा सिंहासन से उतर पड़ते थे, कभी स्वयं सम्राट होना नहीं चाहा।"

श्रीकृष्ण के ये दोनों रूप अत्यन्त आकर्षक, रोचक एवं तात्विक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। दैवी शक्ति एवं ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति एवं उच्चतम ईश्वरीय प्रेम की अद्भुत लीला श्रीकृष्ण के वृन्दावन जीवन की दो विशेषताएँ हैं। सुकुमार बालक होते हुए भी श्रीकृष्ण अघासुर, बकासुर आदि शक्तिशाली राक्षसों का वध कर डालते हैं; अनायास ही गोवर्धन पर्वत को ऊँगली पर उठा लेते हैं, और कालिया सर्प को परास्त कर उसके फण पर नृत्य करते हैं। उनके जीवन का यह काल चमत्कारों से ओतप्रोत है, जो उनके दिव्य स्वरूप का द्योतक है। दूसरी ओर वे नन्द एवं यशोदा के दुलारे, आज्ञाकारी पुत्र, गोप बालों के अभिन्न सखा एवं गोपियों के प्रियतम हैं। उनके ये सभी सम्बन्ध इतने पवित्र, आदर्श एवं निःस्वार्थ हैं कि मानव-इतिहास में निःस्वार्थ प्रेम के इतने उच्च दृष्टान्त पाना कठिन है।

लेकिन श्रीकृष्ण का वृन्दावनोत्तर जीवन इससे भिन्न है। वहाँ भी चमत्कारों के रूप में दैवी स्वरूप का, ईश्वरी शक्ति का प्रदर्शन है लेकिन बहुत कम एवं कभी कभार देखने को मिलता है। और दिव्य प्रेम की लीला तो दिखाई ही नहीं देती। कंस-वध के बाद श्रीकृष्ण संदीपनी ऋषि के आश्रम में एक ब्रह्मचारी की तरह वास कर शिक्षा ग्रहण करते हैं और बाद में एक यादव युवराज के रूप में भारत की राजनीति में सक्रिय योगदान करते हैं। कभी तो वे सामान्य मानव को तरह शत्रुओं से भागते हैं तो कभी राजनैतिक दाँव पेंच, यहाँ तक कि छल द्वारा प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करने का प्रयत्न करते हैं। यही नहीं, उनपर स्यमन्तक मणि की चोरी का आरोप लगाया जाता है और उसे पुनः प्राप्त कर स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए उन्हें बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के इन दो रूपों के बीच पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो व्यासदेव ने दो पृथक व्यक्तित्वों को एक में मिला दिया है। यदि ऐसा है, तो इसके पीछे क्या उद्देश्य है? इन दो पृथक रूपों को एक दूसरे से संबद्ध कैसे किया जाये? अगर दोनों रूप एक ही व्यक्ति के हैं तो गोपीजनवल्लभ गीता गायक कैसे हो गये? गीता के शाश्वत संदेश को प्रदान करने की महान प्रज्ञा और सामर्थ्य उन्होंने कहाँ व कैसे अर्जित की?

श्रीकृष्ण के दो रूपों के बीच सम्बन्ध

श्रीकृष्ण के इन दो रूपों के परस्पर सम्बन्ध के विषय में विभिन्न मान्यताएँ प्रचलित हैं। एक वैष्णव संप्रदाय के मतानुसार श्रीकृष्ण ने कभी भी वृन्दावन का त्याग ही नहीं किया। वे आज भी वहीं विराजमान हैं तथा अपनी प्रेम-लीला नित्य कर रहे हैं जिसका दर्शन एवं आस्वादन बिरले शुद्ध सत्व भक्त आज भी कर सकते हैं। उनके मतानुसार

श्रीकृष्ण दशावतार में से एक नहीं, बल्कि भगवान् स्वयं हैं 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"। भक्त कवि जयदेव ने अपने 'दशावतार स्तोत्र' में इस मत का समर्थन किया है। इन भक्तों के मतानुसार वृन्दावन से मथुरा जाते समय यमुना में स्नान के लिए डुबकी लगाने के बाद जो रूप बाहर प्रकट हुआ वह श्रीकृष्ण का छाया रूप था जो अक्रूर के साथ मथुरा गया था। इसी प्रकार का वर्णन तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में किया है जहाँ यह कहा गया है कि रावण द्वारा हरण किये जाने के पूर्व सीता जी ने अग्नि प्रवेश किया था, एवं अग्नि से उनका एक छाया रूप प्रकट हुआ था, इस छाया रूप को ही रावण ले गया था। वास्तविक रूप को तो रावण ने कभी स्पर्श भी नहीं किया था। लंका विजय के बाद सीताजी की अग्निपरीक्षा के समय छायारूप अग्नि में समाहित होकर पुनः वास्तविक रूप प्रकट हो गया था।

अद्वैत वेदान्ती श्री कृष्ण के दोनों रूपों को ही मिथ्या कहेगा। उनके अनुसार श्रीकृष्ण परब्रह्म परमेश्वर हैं, और वे ही एक मात्र सत्य हैं। उनके दो मिथ्या रूप हों या दस, उनका कोई महत्व नहीं। माया के राज्य में विरोधाभास, भिन्नता एवं वैचित्र्य तो रहेगा ही। उन्हें समझाने का प्रयत्न किये बिना ब्रह्म को जानने का प्रयत्न करना श्रेयस्कर है।

आध्यात्मिक दृष्टि से श्री कृष्ण मानव देह में वास करने वाली आत्मा हैं। गोपियां इन्द्रियों की प्रतीक हैं। विभिन्न राक्षस दुर्गुणों के प्रतीक हैं। पूतना अविद्या की, वकासुर अभिमान का, धेनकासुर देहात्म बोध का प्रतीक है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण को सोलह हजार रानियां उतनी ही चित्त वृत्तियों की प्रतीक हैं। मथुरा द्वारका वृन्दावन की विभिन्न घटनाएं जीवन की उन विभिन्न परिस्थितियों की प्रतीक हैं, जिनके माध्यम से होकर जीव को गुजरना पड़ता है।

उपर्युक्त विभिन्न व्याख्याओं में श्रीकृष्ण को समझने का प्रयत्न किया गया है। लेकिन उनके जीवन के उपर्युक्त दो पक्षों के बीच का सम्बन्ध इन विश्लेषणों से स्पष्ट नहीं होता। अतः उन्हें मानव मान कर इन दो पक्षों को समझने का प्रयत्न करें।

श्रीकृष्ण का मानवी पक्ष—

अगर हम श्रीकृष्ण को एक सामान्य मानव समझकर उनके जीवन का अवलोकन करें तो हम पायेंगे कि वृन्दावन के गोपबाल का मथुरा के यादव युवराज में परिवर्तन तत्काल नहीं बल्कि धीरे-धीरे हुआ था। श्रीकृष्ण ने मथुरा में एक ग्वाल बाल के रूप में ही प्रवेश किया था। उन्होंने अनायास ही उन्मत्त हाथी, अहंकारी धोबी, चामूर एवं कंस को उसी प्रकार मार डाला जिस प्रकार उन्होंने वृन्दावन में असुरों को मारा था लेकिन उन्होंने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि वे मथुरा में ठीक उसी प्रकार आचरण नहीं कर सकते जिस प्रकार वृन्दवन में करते थे। ऐसा करने पर लोग उन्हें गलत समझेंगे। वृन्दावन में ऐसे दैवी ऐश्वर्य के प्राकट्य के बावजूद वहां के सरल ग्रामवासी उन्हें साधारण मानव समझकर निश्छल प्रेम देते रहे थे। लेकिन मथुरा में यह संभव नहीं था। कुब्जा की घटना से यह बात स्पष्ट होती है। श्रीकृष्ण ने कुब्जा की बक्र देह को सीधी सुन्दर बनाकर उसके प्रति अपने स्नेह का प्रदर्शन किया। जिस प्रकार वे गोपियों के साथ निष्पाप हँसी मजाक करते थे, सम्भवतः उसी तरह उन्होंने कुब्जा के साथ की होगी। लेकिन अभागी कुब्जा ने निश्छल पवित्र प्रेम के बदले श्रीकृष्ण से विषय चाहा। इस तरह की घटनाओं से श्रीकृष्ण ने यह अनुभव किया कि संसार के लोग वृन्दावन वासियों की तरह सरल एवं पवित्र नहीं हैं। जिस प्रेम के स्वर्गीय संदेश को वे देने के लिए अवतीर्ण हुए थे, उसे ऐसी भाषा में इस प्रकार देना होगा, जिससे कि निम्नतर कोटि के अधिकारी उसे समझ

कर ग्रहण कर सकें। अतः वृन्दावन के इस निरक्षर बालक ने संदीपनी-आश्रम में छः मास तक पुस्तक ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद भारत के समाज के साथ घुल मिलकर राजनीति में प्रविष्ट होकर उन्होंने भारत के लोगों के मानसिक दृष्टिकोण को समझा। उनके चिन्तन विचार एवं मानसिक गठन को समझने का प्रयत्न किया। इस ज्ञान की सहायता से वे अपने संदेश को एक सुव्यवस्थित रूप देने में समर्थ हुए थे जिसने आगे चलकर गीता का रूप लिया।

अब एक प्रश्न का उत्तर पाना और रह जाता है। श्रीकृष्ण ने गीता के अद्भुत उपदेश को कहाँ सीखा था, जो स्वामी जी की भाषा में: "प्रेम के लिए प्रेम, कर्तव्य के लिए कर्तव्य, कर्म के लिए कर्म, समस्त आदर्शों में उच्चतम आदर्श है।" और फिर उनमें मानव जाति के प्रति ऐसा प्रेम कहाँ से उपजा जिससे प्रेरित हो वे बिना किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के जगतकल्याण के लिए वर्षों तक कार्यरत रहे। यह भी सम्भव नहीं लगता कि संदीपनी-आश्रम में छः मास के निवास-काल में उन्होंने इस उच्चतम दर्शन को सीखा होगा। अतः आइए, इसके कारण को खोजने के लिए उनके पूर्व जीवन वृन्दावन का अवलोकन करें।

यह एक निर्विवाद मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बाल्य जीवन के संस्कार, अनुभव एवं लालन पालन का जीवन-गठन एवं व्यक्तित्व के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बालक की प्रथम शिक्षा माता-पिता द्वारा ही होती है प्रारंभिक अक्षर के साथ ही साथ बालक परिवार के रीति-रिवाज एवं परंपराओं का ज्ञान भी उसी क्रम में प्राप्त करता है। लेकिन इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है वह प्रेम, संरक्षण एवं सुश्रूषा जो बालक अपने माता-पिता से प्राप्त करता है। ये बातें उसके भावी विकास की दिशा एवं चारित्रिक वैशिष्ट्य को प्रभावित एवं निर्धारित करती हैं। इस उम्र में प्रेम पूर्ण सेवा एवं सुरक्षा से जो भावनात्मक तृप्ति बालक की होती है, वह उसे परवर्ती जीवन में उदार, निःस्वार्थ एवं सहिष्णु बनाने में महत् भूमिका अदा करती है। और जिसका बाल्य जीवन प्रेमविहीन होता है, वह बड़ा होने पर स्वार्थी, क्रूर एवं असहिष्णु हो जाता है। माँ सारदा के जीवन में घटी एक घटना का दृष्टान्त इस विषय को समझने में सहायक होगा। पाँच वर्ष की उम्र में श्रीरामकृष्ण के साथ विवाह हो जाने के बाद, चौदह वर्ष की उम्र में पहली बार उन्हें श्रीरामकृष्ण के साथ निवास करने का अवसर मिला था। 'श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंगकार' माँ सारदा के तत्कालीन अनुभव का वर्णन करते हुए कहते हैं: "पवित्र बालिका देह-बुद्धि-विरहित श्रीरामकृष्ण का दिव्यसंग एवं निःस्वार्थ स्नेहयत्न पाकर इस समय आनन्द से परिपूर्ण हो गई थी। उन्हें अनुभव होता था मानो हृदय में आनन्द का पूर्ण घर सदा स्थापित है, उस धीर स्थिर उल्लास से हृदय कितना पूर्ण बना रहता यह वर्णन नहीं किया जा सकता। इस उल्लास की उपलब्धि से उनके चाल चलन वाणी, चेष्टाप्रचेष्टाओं में एक परिवर्तन परिलक्षित हुआ था। उसने उसे चपला न बनाकर शान्त स्वभावा, वाचाल न कर चिन्तन शोला, स्वार्थी न बनाकर निःस्वार्थ प्रेमिका बनाया था एवं हृदय के सर्व प्रकार के अभाव-बोध को तिरोहित कर जन साधारण के दुःख कष्ट के प्रति अनन्त संवेदना संपन्न कर करुणा की साक्षात् प्रतिमा में परिणत कर दिया था। कुछ इसी तरह की बात श्रीकृष्ण के साथ हुई होगी। वे ही समस्त व्रज कुल के एक मात्र परम प्रेमास्पद थे। नन्द, यशोदा, गोप बाल एवं गोपियां सभी के प्रेम के वे ही एकमात्र केन्द्र थे। व्रज मंडल के सभी नर नारियों, आबाल वृद्ध वनिताओं ने अपना निश्चल, निःस्वार्थ प्रेम मानो श्रीकृष्ण के

हृदय में उड़ेल कर उसे परिपूर्ण कर दिया था। और इसी ने उन्हें मानव जाति के दुःख कष्ट के प्रति अनन्त गुणा सहानुभूति संपन्न, एवं संवेदन-शील बना दिया था। इसी संवेदन शीलता के कारण वे मानव जाति के रोग का सही निदान खोजने, तथा उसकी अमोघ औषधि, गीता को प्रदान करने में समर्थ हुए थे।

श्रीकृष्ण को मानव मानकर विचार करने पर उपर्युक्त व्याख्या उचित ही प्रतीत होती है, लेकिन यदि श्रीकृष्ण को ईश्वरावतार माना जाये तो यह उचित नहीं प्रतीत होता कि जो प्रेम का उत्स एवं करुणा सागर हो, वह दूसरों से प्रेम प्राप्त कर अथवा प्रेम के लिए दूसरों पर निर्भर हो। दाता, याचक कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि करुणा-सिन्धु भगवान भी लीला का, भक्ति-रस का आस्वादन करने के लिए याचक बनता है। वह स्वयं को भक्त और भगवान् में, प्रेमी और प्रियतम में विभक्त कर लेता है। भक्त भगवान् के ही रूप होते हैं। ये दोनों एक दूसरे को आकृष्ट करते हैं। कभी भक्त के आकर्षण से भगवान खिंचे आते हैं। वेदांत की दृष्टि से भी भक्त और भगवान, जीव और ब्रह्म दोनों ही स्वरूपतः सच्चिदानन्द हैं। उनका अन्तर केवल उपाधियों मात्र का अन्तर है। इसके अतिरिक्त ऐसी भी मान्यता है कि यशोदा तथा अन्य गोपियाँ पूर्वजन्म में तपस्वी ऋषि थे, जिन्होंने भक्तिरस के आस्वादन के लिए कृष्णावतार में गोपियों के रूप में जन्म लिया था।

प्रेमी की शिक्षा प्राप्त करने के अतिरिक्त श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में स्थितप्रज्ञ एवं गुणातीत भक्त के लक्षण भी सीखे थे, जिनका उन्होंने गीता में विस्तार किया था। ये लक्षण गोपियों में समय समय पर प्रकट होते थे। श्रीकृष्ण के ध्यान में गोपियों की बाह्य चेतना का लोप हो जाता था एवं उन्हें महाभाव की अनुभूति होती थी। उनकी समस्त वासनाओं का त्याग हो गया था एवं उनका मन पूरी तरह श्रीकृष्ण में लीन हो गया था। श्रीकृष्ण के ध्यान में उन्हें शीतोष्णादि द्वन्द्वों का अनुभव नहीं होता था। गीता में वर्णित श्रेष्ठ भक्त के लक्षण गोपियों में हू-ब-हू पाये जाते हैं।

उपसंहार—उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोपीजनवल्लभ एवं गीता गायक एक ही श्रीकृष्ण के दो परस्पर सम्बन्धित रूप हैं भले ही वे कितने ही भिन्न प्रतीत क्यों न हों। यदि प्रथम रूप कारण है तो दूसरा कार्य। वृन्दावनविहारी में ही द्वारिकाधीश निहित हैं। एक ही व्यक्ति दो विभिन्न भूमिकाओं में दिखाई दे रहा है। गीता गायक श्रीकृष्ण आचार्य हैं, तो गोपी-जन वल्लभ इष्ट हैं। एक के उपदेशों का पालन किया जाता है, दूसरे के रूप का ध्यान एवं अर्चना की जाती है। पार्थसारथी वृन्दावनबिहारी के बाह्य रूप हैं। एक पुरुषोत्तम हैं जिनके आदर्श जीवन का अनुसरण करना चाहिए, दूसरे परमाराध्य पूर्ण परमेश्वर हैं।

एक ही व्यक्ति के दो पृथक रूप हो सकते हैं, यह बात श्रीरामकृष्ण भावधारा से परिचित लोग आसानी से समझ सकते हैं। श्रीरामकृष्ण के भक्त श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द को एक ही सत्ता के दो रूप समझते हैं। युगावतार श्रीरामकृष्ण ने ही युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द का रूप धारण किया है। और जिस प्रकार गीता के उपदेशों को हृदयंगम किये बिना, उसके अनुसार इन्द्रिय मन आदि का संयम कर स्थितिप्रज्ञ हुए बिना वृन्दावन बिहारी श्रीकृष्ण की दिव्य प्रेमलीला को समझना कठिन है, उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों को हृदयंगम किये बिना श्रीरामकृष्ण की विशालता, महानता को समझना असंभव है।

ओंकार

—ब्रह्मचारी रामेश्वर
बेलुड़ मठ

बाइबिल में लिखा है : In the beginning was the word, and the word was with God, and the word was God[1] "परन्तु वह word (शब्द) क्या है, इसका उल्लेख बाइबिल में नहीं है। वह शब्द ओम् है। हमारे देश के ऋषिमुनियों ने हजारों वर्ष पहले ही इस पवित्र शब्द का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। हिन्दू धर्मग्रन्थों में ओम् का विशद् वर्णन मिलता है तथा हिन्दू-दर्शन का मूल मंत्र ही ओम् है। इसे ओंकार अथवा प्रणव भी कहते हैं।

ब्रह्म-वाचकः प्रणवः

इस चराचर विश्व के जो वास्तविक आधार हैं, जो अनादि, अनन्त एवं अद्वितीय हैं तथा जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, उस निर्गुण निराकार सत्ता को हमारे शास्त्रों ने ब्रह्म की संज्ञा दी है।[2] और इसी ब्रह्म का वाचक शब्द (Designation) ओम् है। ओम् ब्रह्मस्वरूप है।[3]

ब्रह्म जब अपनी मायाशक्ति के द्वारा सृष्टि, स्थिति, प्रलय करते हैं तब उन्हें 'ईश्वर' नाम से अभिहित करते हैं[4] और जब वे मानव रूप में प्रकट होकर हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृतत्व की ओर, असत् से सत् की ओर ले जाते हैं तब उन्हें हम 'अवतार' कहकर पुकारते हैं।[5]

अतएव, ईश्वर अथवा अवतार ब्रह्म के ही विशिष्ट प्रकाश (Special manifestation) हैं। साथ ही और भी जितने देव-देवी हैं वे भी उसी अद्वितीय ब्रह्म के विशेष-विशेष प्रकार मात्र हैं।

ब्रह्म इस सृष्टि के निमित्त कारण (efficient cause, doer) ही नहीं, उपादान कारण (material cause) भी हैं। प्रारम्भ में एकमात्र ब्रह्म ही थे उनकी इच्छा हुई अनेक हो जाने को 'एकोऽहम् बहु स्याम' और उन्होंने अपने आप को ही इस जीव-जगत् के रूप में प्रकट किया। जैसे मकड़ी अपने अन्दर के ही तन्तुओं से जाल बुनती है। अतः यह विश्व-ब्रह्माण्ड ब्रह्म से भिन्न नहीं है। ब्रह्म ही विभिन्न रूपों में प्रतिभासित हो रहे हैं।[6]

अतएव ब्रह्म का वाचक होने के कारण ओम् ईश्वर, अवतार तथा जीव जगत् सभी का वाचक हुआ। इस प्रकार यह शब्द निर्गुण-निराकार ब्रह्म का बोध कराता है तो सगुण-साकार ईश्वर का भी, लीलाधारी ईश्वरावतार का बोध कराता है, तो जीव-जगत् का भी। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण, ब्रह्म जिस रूप में भी अपने आप को प्रकाशित कर रहे हैं, ओम् उन सभी का बोध कराता है। इतना व्यापक अन्य कोई शब्द नहीं है।

सृष्टि का मूल कारण

कहा जाता है कि ओंकार से ही इस विश्व की सृष्टि हुई है। वह कैसे ? 'शब्द' पद का वैदिक अर्थ है 'सूक्ष्म भाव' (Subtle idea)। सूक्ष्म भाव स्थूल पदार्थ का सूक्ष्म रूप है। इन्हीं भावों का आश्रय लेकर सभी स्थूल पदार्थों की सृष्टि होती है। जैसे एक चित्रकार जब कोई चित्र बनाता है, तो चित्र बनाने के पहले उसके मन में एक भाव (idea) रहता है। उसी भाव को वह रूप प्रदान करता है। इसी प्रकार कुम्भकार जब कोई मिट्टी का बर्तन बनाता है, उसके भी मन में एक भाव रहता है कि क्या बनाना

है और कैसे बनाना है। भाव शब्द ही स्थूल रूपों का जन्म-दाता है, इसे विज्ञान ने भी प्रमाणित कर दिया है। मन में उठने वाला प्रत्येक भाव (idea or thought) अथवा मुख से उच्चरित होने वाला प्रत्येक शब्द विशेष-विशेष कम्पन (vibratton) मात्र है। इन कम्पनों में खास-खास आकृति बनाने की क्षमता रहती है। "Voice figure" की प्रसिद्ध लेखिका मिसेज वाट्स ह्यु्गस (Mrs. watts Hughes) ने अपने चित्रलेखी यंत्र (Eidophone) के द्वारा इसे प्रदर्शित कर दिया है। इस यंत्र में, अन्य अवयवों के अतिरिक्त एक सुनम्य झिल्ली रहती है। इस यंत्र के अन्दर जब कुछ गाया जाता है तो ध्वनित स्वर के द्वारा जो वायु-कम्पन उत्पन्न होता है वह सुनम्य झिल्ली पर रखे कोपोडियम पाउडर को एक सुनिश्चित तथा स्थिर आकृति के रूप में सजा देता है। फ्रांस में, मैडम फिनलेंग ने जब 'ओ इव मरियम' नामक भजन गाया तो शिशु प्रभु यीशु को गोद में लिये कुंवारी मरियम की छवि अंकित हो गयी। पुनः फ्रांस में अध्ययनरत वाराणसी की एक बंगाली छात्रा ने जब भैरव-स्तोत्र का पाठ किया तो वाहन (कुत्ता) सहित भैरव की मूर्ति बन गयी।[7]

अतः किसी भी स्थूल पदार्थ की सृष्टि होने के पूर्व उससे संबंधित सूक्ष्म भाव विद्यमान रहता है और वही भाव स्थूलाकार में परिणत होता है। सारी सृष्टि के साथ यही नियम लागू होता है। अतः हम कह सकते हैं कि विभिन्न प्रकार के भावों अथवा शब्दों से ही इस विचित्र बहुरूपात्मक विश्व की सृष्टि हुई है। पुनः विश्व-निर्माणकारी ये सभी भाव एक ही शब्द अथवा भाव से निःसृत हुए हैं और वह है 'ओम्'। ओम् सभी भावों की समष्टि है। अतएव ओम् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि के मूल में है। तथा ओम् ब्रह्म का प्रथम प्रकाश है। ब्रह्म सर्वप्रथम अपने आप को ओम् के रूप में व्यक्त करते हैं और तब इससे जगत् की सृष्टि होती है।[7]

अब प्रश्न उठता है कि इसका क्या प्रमाण है कि विश्व निर्माणकारी सभी भाव ओम् से ही निःसृत हुए हैं? इसका सबसे बड़ा प्रमाण है, ब्रह्मज्ञ पुरुषों की प्रत्यक्ष अनुभूति। "ब्रह्मावगाही मन एक एक करके ऐसी अवस्थाओं में से गुजरता है और अन्त में निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त होता है। समाधि की उन्मुख अवस्था में अनुभव होता है कि जगत् शब्दमय है; फिर वह शब्द गम्भीर ओंकार ध्वनि में लीन हो जाता है। तत्पश्चात् वह भी सुनायी नहीं पड़ता है। वह है भी या नहीं, इस पर सन्देह होने लगता है। उसी को अनादि नाद कहते हैं। इस अवस्था से आगे हो मन प्रत्यक् ब्रह्म में लीन हो जाता है। बस, सब निर्वाक्, स्थिर।"[8] इसके ठीक विपरीत "अवतार तुल्य महापुरुष लोग समाधि अवस्था से जब 'मैं' और 'मेरा' के राज्य में लौट आते हैं, तब वे प्रथम ही अव्यक्त नाद का अनुभव करते हैं। फिर नाद के स्पष्ट होने पर ओंकार का अनुभव करते हैं। ओंकार के पश्चात् शब्दमय जगत् का अनुभव कर अन्त में स्थूल पंचभौतिक जगत् को प्रत्यक्ष देखते हैं।"[9]

थोड़ा विचार करने पर यह बात सहज समझ में आ सकती है कि ओम् सभी प्रकारों के भावों की जननी है। शब्द और भाव के बीच एक स्वाभाविक संबंध है। 'मन में जो भी भाव (idea or thought) उठता है, उसका एक प्रतिरूप शब्द भी रहता है; इस शब्द और भाव को अलग नहीं किया जा सकता।'[10] हम जो कुछ भी सोचते हैं वह शब्दों की सहायता से ही, चाहे वे शब्द संस्कृत भाषा के हों या अंग्रेजी भाषा के अथवा अन्य किसी भाषा के। अतएव सभी भाव शब्दों में ही अन्तर्निहित हैं। इसीलिए शब्द और भाव को एक दूसरे का पर्यायवाची पद के रूप में भी ग्रहण किया जाता है। तथा मुख से उच्चरित होने वाली एकक ध्वनियों (Unit Sounds) के मेल से शब्द बनता है। जैसे

स् अ तथा त् इन तीन एकक ध्वनियों को एक साथ उच्चारित करने पर 'सत्' शब्द बनता है। अतएव प्रत्येक शब्द मुख के अन्दर ही पैदा होता है, उसका आरम्भ जिह्वा मूल से होता है और अन्त ओठों में। अ, उ तथा म् इन तीन एकक ध्वनियों के मेल से ओम् बनता है। उसका प्रथक अक्षर अ' सभी शब्दों का मूल है—वह सारे शब्दों की कुंजी के समान है, वह जिह्वामूल अर्थात् कण्ठ से उत्पन्न होता है। म् ओठों की अन्तिम ध्वनि है और उ जिह्वामूल से आरम्भ होकर मुंहभर में लुढ़कतो हुई ओठों में समाप्त होतो है। इस प्रकार ओम् शब्द के द्वारा शब्दोच्चारण की सम्पूर्ण क्रिया प्रकट हो जाती है। और कोई भी ऐसा शब्द नहीं जो इस प्रकार उच्चारित किया जा सके। अतः हम कह सकते हैं कि कण्ठ से लेकर ओठ तक जितने भी प्रकार की एकक ध्वनियां उत्पन्न हो सकती हैं, ओम् में उन सभी ध्वनियों का समावेश है। फिर इन्हीं ध्वनियों के मेल से शब्द बनते हैं। अतः ओम् सभी शब्दों की समष्टि है। "जितने प्रकारके शब्द उच्चरित हो सकते हैं—हमारी ताकत में जितने प्रकारके शब्द उच्चारण करने की सम्भावना है ओम् उन सभी का सूचक है।"[11] फिर जैसा कि ऊपर कहा गया है, शब्दों के द्वारा ही भाव व्यक्त होते हैं, अतः सभी भावों की उत्पति के मूल में ओम् ही है। ओम् से ही विश्व-निर्माणकारी सभी भाव निःसृत हुए हैं।

ब्रह्म के जितने भी वचाक हो सकते हैं, ओम् उनका सामान्य वाचक है क्योंकि इसमें अन्य सभी वाचक अन्तर्भुक्त हैं। इसीलिए ओम् ब्रह्म का सर्व श्रेष्ठ वाचक है।

ओम् का लिखित रूप

एकक ध्वनियों के लिखित रूप अथवा प्रतीकात्मक चित्रण (Symbolic represcntation) को अक्षर कहते हैं। कई अक्षरों को मिलाकर शब्द का लिखित रूप होता है। 'ओम्' ब्रह्मवाचक शब्द का लिखित रूप है जो कालक्रम से परिवर्तित होकर ॐ हो गया है। इस परिवर्तन का कारण है। हमारे शास्त्रों में इस शब्द का सर्वाधिक प्रयोग है। अतः इसे बार-बार लिखना पड़ता था। अतएव प्रत्येक व्यक्ति की यह प्रवृत्ति रही होगी कि इसे लिखने की दृष्टि से सुविधाजनक बनाया जाय। इसी के चलते ओम् का रूप धीरे-धीरे परिवर्तित होकर ॐ हो गया होगा। यह परिवर्तन संभवतः निम्नलिखित क्रम में हुआ होगा। ओं = ॐ = ॐ

ओम् (ओं)=ओं=ॐ=ॐ=ॐ

ओम् की मात्राएँ

अ, उ तथा म् के मिलने से ओम् बनता है। (अ+उ)+म्=ओ+म् =ओम्। इन्हें ओम् शब्द की मात्राएँ कहते हैं। ओम् का उच्चारण करने के बाद भी कुछ देर तक जो एक अस्पष्ट गूंज बनी रहती है उसे अर्द्धमात्रा अथवा अमात्रा कहते हैं। इन मात्राओं एवं अमात्रा को विभिन्न भावों के वाचक के रूप में ग्रहण किया जाता है। जैसे अ (अव+ड) को विष्णु, उ (अत्++ड्) को शिव तथा म (मी+ड) को ब्रह्मा का वाचक तथा अमात्रा को परमेश्वर का वाचक माना जाता है। इसी प्रकार साधक अपनी आवश्यकता एवं अवस्थानुसार इन मात्राओं को विभिन्न भावों का प्रतीक मानते हैं।[12]

ओम् एवं आध्यात्मिक साधना

ओम् एक महामंत्र है। इसका जप और उसके अर्थ का चिन्तन समाधि-लाभ का उपाय है।[13] वाचक और वाच्य का अभेद संबंध होता है। ज्योंही वाचक शब्द का स्मरण अथवा उच्चारण किया जाता है, त्यों ही वह उसके वाच्य पदार्थ (thing signified) की बात मन में ला देता है। जैसे 'स्वामी विवेकानन्द' नाम का उच्चारण करते ही इस महान् पुरुष के अलौकिक जीवन एवं उनके अद्भुत कार्यों संबंधी विचारों से हमारा मन आप्लावित

हो जाता है। अतएव वाचक वाच्य संबंधी सभी ज्ञान एवं विचारों का प्रकाशक होता है। यदि ये विचार शुभ और मंगलकारी होते हैं तो हमारे ऊपर इसका शुभ प्रभाव पड़ता है क्योंकि व्यक्ति जैसा सोचता है वैसा हो जाता है! यत् ध्यायति तत् भवति। ओम् शब्द का उच्चारण अथवा स्मरण करने से हमारे मन में ब्रह्मभाव जागृत होता है। मन में सदा यह भाव जगाये रखने पर धीरे-धीरे मन अत्युच्च स्तर पर आरूढ़ हो जाता है और अन्त में साधक की ब्रह्मभाव में अवस्थिति हो जाती है अर्थात् ब्रह्म के साथ वह तादात्म्य लाभ कर लेता है, अपने आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। जैसे भ्रमर का चिन्तन करते करते झिंगुर, भ्रमर ही बन जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म का चिन्तन करते-करते साधक ब्रह्म ही हो जाता है। अतः ओम् सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् तक पहुँचने की कुंजी है।[14]

इस प्रकार हमने देखा कि ओम् अतिव्यापक, विश्वजनीन तथा सर्वभावापन्न ब्रह्मवाचक शब्द है। "भारतवर्ष में धर्म के विकास की प्रत्येक अवस्था में उसके प्रत्येक सोपान में ओंकार को अपनाया गया है, उसका आश्रय लिया गया है और वह ईश्वर संबंधी सारे भावों को व्यक्त करने के लिए व्यवहृत हुआ है। अद्वैतवादी, द्वैताद्वैत वादी, भेदवादी, यहाँ तक कि नास्तिकों ने भी अपने उच्चतम आदर्श को प्रकट करने के लिए इस ओंकार का अवलम्बन किया था। मानव जाति के अधिकांश के लिए यह ओंकार उनकी अपनी धार्मिक स्पृहा का एक प्रतीक बन गया है। अतएव अन्य देशों की विभिन्न जातियाँ भी इसका अवलम्बन कर सकती हैं। अंग्रेजी God शब्द को लो। वह जिस भाव को प्रकट करता है, वह कोई अधिक दूर तक नहीं जा सकता। यदि तुम उसके अतिरिक्त अन्य कोई भाव उस शब्द से व्यक्त करने की इच्छा करो तो तुम्हें उसमें विशेषण लगाना पड़ेगा—जैसे सगुण, निर्गुण, निर्विशेष (Absolute) आदि-आदि। अन्य दूसरी भाषाओं में ईश्वर-वाचक जो सब शब्द हैं, उनके बारे में भी यही बात घटती है, उनमें बहुत कम भाव प्रकट करने की शक्ति है; किन्तु 'ॐ' शब्द में ये सभी प्रकार के भाव विद्यमान हैं। अतएव सर्वसाधारण को उसका ग्रहण करना चाहिए।"[15]

संदर्भ विवरण

(१) Bible, Book of John, 1/1

(२) (क) 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'-तैतरीय उपनिषद्, 2/1
— ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप तथा अनन्त हैं।

(ख) 'सच्चिदानन्दद्वयं ब्रह्म'—वेदान्तसार 2/33
—ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप तथा अद्वितीय हैं।

(३) (क) 'ओमिति ब्रह्म'—तैं० शी०,८
ओम् यह ब्रह्म है।

(ख) 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म···८'—गीता, ८/१३
—ओम् इस एक अक्षर रूप ब्रह्म ······।

(ग) गीता (९/१७) में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है—'(अहम्) पवित्रमोंकार : ·····।
—मैं ही पवित्र ओंकार हूँ।

(घ) तस्य वाचक : प्रणव :।
—पातंजल योगसूत्र, १/२७
—प्रणव अर्थात् ओंकार उनका (ईश्वर का) वाचक है।

(४) (क) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।'—तैं० उ०, ३/१

—ये सब प्रत्यक्ष दीखनेवाले प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं; उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं तथा अन्त में इस लोक से प्रयाण करते हुए जिसमें प्रवेश करते हैं उसको तत्त्व से जानने की इच्छा कर। वही ब्रह्म है।

(ख) 'जन्माद्यस्य यतः ।—ब्रह्मसूत्र, १/१/२

इस जगत के जन्मादि (उत्पत्ति, स्थिति, लय) जिससे होते हैं, वहीं ईश्वर है।

(५) (क) 'व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज भगति प्रेम बश कौसल्या के गोद ॥'
—श्रीरामचरित मानस बा० का०, १९८

—जो ब्रह्म सर्वव्यापक, निरंजन, निर्गुण, विनोद रहित और अजन्मा हैं, वही प्रेम और भक्ति के वश (मानव देह धारण कर) कौसल्या जी की गोद में हैं।

(ख) जिस प्रकार पानी जमकर बर्फ बन जाता है, उसी प्रकार निराकार, अखण्ड, सच्चिदानन्द ब्रह्म ही साकार रूप धारण करता है।

—अमृतवाणी, ८८१

(६) (क) 'यथोर्णनाभि सृजते गृह्णते च,
तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ।'
—मु० उ०, १/१/७

—जिस प्रकार मकड़ी (अपने ही तन्तुओं से) जाले को बनाती है और निगल जाती है, उस प्रकार अविनाशी पर ब्रह्म से इस सृष्टि में सबकुछ उत्पन्न होता है।

(ख) 'नेति-नेति' करते हुए समाधि में पहुँचकर तुम्हारा अहं ब्रह्म में विलीन हो जाता है। फिर जब तुम समाधि से उतरकर नीचे आते हो तब तुम्हें दिखाई देता है कि ब्रह्म ही तुम्हारे 'अहं' के रूप में तथा सारे जगत् के रूप में व्यक्त हो रहा है।

—अमृतवाणी, ८६५

(ग) 'ब्रह्मैवेदं विश्वमित्येव वाणी
श्रौती ब्रूतेऽथर्व निष्ठा वरिष्ठा ।'
—विवेक चूड़ामणि, २३३

—'यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही है' ऐसा अति श्रेष्ठ अथर्व श्रुति कहती है।

(७) विशेष द्रष्टव्य : (क) विवेकानन्द साहित्य, षष्ठ खण्ड, प्रथम संस्करण, पृ० — ५४-५४

(ख) स्वामी विवेकानन्द कृत भक्ति योग प्र० संस्करण पृ० – ४८

७ A) विशेष द्रष्टव्य—स्वामी शिवानन्द कृत जप योग (English), पृ० ८

(८) विवेकानन्द साहित्य, षष्ठ खंड (प्रथम संष्करण), पृ ५५

(९) वही

(१०) स्वामी विवेकानन्द कृत राजयोग (च० संस्करण), पृ०—१५९

(११) वही, पृ० —१६०

(१२) ओम् की मात्राओं को अनेक भावों के वाचक माने जाते हैं।

(१३) 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्'—पातंजल योगसूत्र, १/२८

(१४) (क) 'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म
तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो
भवेत् ॥' मु० उ०, २/४

—प्रणव (ओम्) धनुष है। आत्मा वाण है। ब्रह्म लक्ष्य कहा गया है। सावधानी से बींधना चाहिए। वाण के सदृश (अभ्यासी अपने लक्ष्य ब्रह्म में) तन्मय हो जाय।

(ख) 'एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।'
— कठोपनिषद्, १/२/१७

यह ओंकार ही (परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए सब प्रकार के आलम्बनों में से) सबसे श्रेष्ठ आलम्बन है और यही चरम आलम्बन है। इस रहस्य को समझकर जो साधक श्रद्धा और प्रेमपूर्वक इसपर निर्भर करता है वह ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है।

(ग) 'तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्
यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ।'
प्रश्नोपनिषद, ५/७

—विवेकशील साधक केवल ओंकर रूप अवलम्बन के द्वारा ही उस परब्रह्म पुरुषोत्तम को पा लेता है- जो परम शान्त, जरारहित, मृत्युरहित, भयरहित और सर्वश्रेष्ठ है।

(घ) 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥,
गीता ८।१३

—जो पुरुष ॐ इस एक अक्षररूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप परमात्मा का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

ओंकार को सारे मन्त्रों का सेतु बतलाया गया है तथा मनोवांछित फल की प्राप्ति के लिए प्रत्येक मंत्र को ओम् के साथ उच्चारण किया जाता है। यथा—

'मंत्राणां प्रणवः सेतुः'

माङ्गल्यं पावनं धर्म्यं सर्वकाम प्रसाधनम्!
ओंकारः परमं ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकम्॥'

(१५) स्वामी विवेकानन्द कृत राजयोग
(च० संस्करण) पृ०—१६०.

(नोटः ओम् अति पवित्र एवं गूढ़ मन्त्र है। इसके संबध में कुछ कहने अथवा लिखने का अधिकार केवल प्रत्यक्षानुभूति सम्पन्न पुरुषों को ही है। फिर भी, अपनी अल्प बुद्धि के द्वारा मैंने जो कुछ समझा है उसे ही लिपिवद्ध करने की चेष्टा की है)

●

मार्क्स के धार्मिक दृष्टिकोण की मीमांसा (२)

—स्वामी सत्यरूपानन्द
बेलुड़ मठ

मार्क्स ने लिखा है—'धार्मिक जगत् वास्तविक जगत् का प्रतिबिम्ब मात्र है।'[15] मार्क्स के इस कथन में मार्क्सवादी दर्शन का मौलिक प्रश्न अंतर्निहित है कि वास्तविक सत्ता क्या है? मार्क्स जिस सत्ता में विश्वास करते थे वह है इन्द्रियग्राह्य वस्तुगत भौतिक जगत्। उनके अनुसार मनुष्य, विचार, चेतना आदि सभी वस्तुएं जड़ पदार्थ से उत्पन्न हुई हैं। मार्क्सवादी विद्वान अफनासेइव (AFANASYEV लिखते हैं:

"मार्क्स का दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। यह भौतिकवादी इसलिए है कि दर्शनशास्त्र के मूल प्रश्न के समाधान के लिए यह इस आधार वाक्य (PREMISE) से अग्रसर होता है कि—जड़ पदार्थ मूलभूत वस्तु है और चेतना परवर्ती। यह जगत् की भौतिकता एवं ज्ञेयता को स्वीकार करता है और जगत् जिस रूप में है, उसी रूप में उसकी परख करता है। मार्क्सवादी दर्शन द्वन्द्वात्मक इसलिए है कि वह भौतिक जगत् की परख सततगति (CONSTANT MOTION), विकास(DEVELOPMENT) एवं पुनरुद्भवन (REGENERATION) की अवस्था में करता है।[16]

मार्क्सवादियों के लिए समस्त नानाविध अभि-

व्यक्तियाँ—चेतन और अचेतन, कुछ नहीं, केवल जड़ पदार्थ की ही विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। एक दूसरे मार्क्सवादी विद्वान श्री मिटिन लिखते हैं—'मार्क्सवाद प्रकृति का अर्थ विश्व ब्रह्माण्ड के रूप में लेता है और इसकी व्याख्या करते हुए कहता है कि यह जो अपनी विभिन्न अभिव्यक्तियों के रूप में दृश्यमान है, वे जड़ पदार्थ हो हैं। यह चेतना से स्वतंत्र वस्तुपरक सत्ता है जिसका बाह्य अस्तित्व है और चेतना के किसी भी रूप में प्रकट होने के पूर्व से ही इसका अस्तित्व रहा है।'"[17]

यदि तथाकथित वास्तविक जगत् भौतिक है तो स्वाभाविक रूप से इसका प्रतिबिम्ब स्वरूप धार्मिक जगत् भी जड़ पदार्थ की ही अभिव्यक्ति होगा। यह विचार पूर्णरूप से धर्म के मूल अर्थ का विरोधी है। क्योंकि धर्म का वास्तविक अभ्यंतर अभौतिक है। धर्म का मूल उद्देश्य है जड़ पदार्थ का अतिक्रमण कर इसके पीछे स्थित चैतन्य की अनुभूति करना। धर्म को जड़ पदार्थ की अभिव्यक्ति मानना उतना ही हास्यास्पद एवं निरर्थक है जितना कि शव को एक सजीव व्यक्ति समझना। धर्म का अर्थ है आत्मचैतन्य का अनुसंधान करना। इसका आरंभ जड़पदार्थ से है, किंतु अवसान वहाँ नहीं है। डॉ० राधाकृष्णन् ने लिखा है, "धार्मिक व्यक्ति अपने ऊपर अपनी भौतिक प्रकृति अथवा सामाजिक परिस्थितयों द्वारा आरोपित सीमाओं का अतिक्रमण कर जाता है एवं सर्जनात्मक प्रयोजन को विस्तृत करता है।[18]

धर्म आध्यात्मिक विकास की एक प्रक्रिया है। जबतक व्यक्ति जड़ पदार्थ का अतिक्रमण नहीं कर जाता है तब तक कोई आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। उतना ही नहीं, जड़पदार्थ एवं उसकी नानाविध अभिव्यक्तियों पर विशेष जोर देना, आध्यात्मिक प्रगति की संभावनाओं की हत्या कर देना है। जाफना में वेदान्त पर दिये गये अपने व्याख्यान में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं :

"भारत में और भारत के बाहर भी बाह्य प्रकृति के अध्ययन द्वारा सर्वातीत सत्ता की झलक पाने के प्रयत्न हो चुके हैं और हम सभी जानते हैं कि इनका क्या शोचनीय फल निकला। अतीत वस्तु की झलक पाने के बदले जितना ही हम जड़ जगत् का अध्ययन करते हैं उतने ही हम भौतिकवादी होते जाते हैं। जड़जगत् को हम जितना नियंत्रित करना चाहते हैं, उतनी ही हमारी शेष आध्यात्मिकता भी काफूर होती जाती है।"[19]

यदि धार्मिक जगत् वास्तविक जगत् अर्थात् भौतिक जगत् का प्रतिबिम्ब मात्र है तब धर्म भी कुछ नहीं, वह भी भौतिकधर्म मात्र है। धर्म शब्द अपने नाम से ही किसी आध्यात्मिक एवं अभौतिक वस्तु की ओर संकेत करता है। इसलिए 'भौतिक धर्म' कहना एक प्रकार का शाब्दिक विरोध होगा, अतएव यह निरर्थक है।

मनुष्य पर हुए किसी बाह्य संघात से धर्म की उत्पत्ति नहीं हुई है। यह मनुष्य का अन्तर्विकास है। यह मनुष्य में अन्तर्निहित ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति है। धार्मिक विचार मानव स्वभाव के सारभूत अवयव हैं। यह संभव है कि विभिन्न प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान, धर्मसिद्धान्त, मतवाद आदि वास्तविक जगत् के प्रतिबिम्ब हों और उनपर सामाजिक एवं भौतिक प्रभाव हो। किन्तु धार्मिक विचारों के सार तत्त्व का अस्तित्व मनुष्य के भीतर स्मरणातीत काल से रहा है। मानव नियति के प्रख्यात लेखक लिकॉम्टे डू नाउड का कहना है—

"किसी भी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान से पृथक्, समस्त धर्म पंथों से स्वतंत्र सदा से ही संसार में एक धार्मिक मनोवृत्ति—अर्थात् एक सर्वशक्तिमान सत्ता के प्रति आस्थावान होने की अभिलाषा, प्रतिबंध मुक्त आराधना की स्पृहा, समग्र उपासना में स्वयं को क्षुद्रातिक्षुद्र कर देने की कामना, एक

कल्पनीय किन्तु अगम्य आदर्श के माध्यम से स्वयं को उन्नत करने की आकांक्षा वर्त्तमान रही है। यह ईश्वरीय स्रोत से उत्पन्न आकांक्षा है; क्योंकि यह सार्वभौम है एवं सब मनुष्यों में समान रूप से है।"[20]

यहाँ भी हम देखते हैं कि मार्क्स एवं उनके अनुयायी धोखे से सीप को मोती समझ बैठे हैं। नाना प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान, मतवाद, अंधविश्वास आदि भौतिक जगत् के प्रतिबिम्ब हो सकते हैं और उन पर भौतिक पदार्थ का प्रभाव हो सकता है। परन्तु वे (अनुष्ठान आदि) वास्तविक धर्म नहीं हैं। वास्तविक धर्म इन्द्रियातीत एवं लोकोत्तर है। उसकी अनुभूति अंत:प्रज्ञा से होती है। यद्यपि इसका प्रतिबिम्बन जड़वस्तु नहीं होता है; किन्तु, अनुभूति अनुभवकर्ता के संपूर्ण व्यक्तित्व को परिवर्तित कर देती है। वह एक उदारहृदय मनुष्य हो जाता है जिसका जीवन बहुजन हिताय बहुजन सुखाय समर्पित हो जाता है। इस तरह का उदात्त जीवन धर्म की इन्द्रियातीत सच्चाई को प्रमाणित करता है।

कार्लमार्क्स ने १८४४ में लिखा कि – धर्म लोगों के लिए अफीम के समान है। मार्क्स की यह उक्ति उनके अनुयायियों के लिए वेद वाक्य बन चुकी है। लेनिन लिखता है—

"मार्क्स की यह उक्ति धर्म के प्रति संपूर्ण मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आधारशिला है। मार्क्सवादी समस्त आधुनिक धर्मों एवं चर्चों तथा प्रत्येक धर्म संगठन को हमेशा मध्यवर्गीय प्रत्याक्रमण का हथियार मानता है जिसका उपयोग शोषण के समर्थन में किया जाता है और जिसके द्वारा सर्वहारावर्ग को मतवाला बना दिया जाता है।"[21]

यहाँ पुनः भ्रान्तिपूर्ण आधार वाक्य के भ्रान्तिपूर्ण निष्कर्ष निकाला गया है। मार्क्सवादी विद्वान अफनासेइव लिखते हैं—"धर्म की सामाजिक भूमिका या तो प्रगतिशील हो सकती है अथवा प्रतिक्रियात्मक; क्योंकि इसका उपयोग समाज के वर्ग या समुदाय द्वारा राजनैतिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

शोषक वर्ग धर्म का उपयोग आध्यात्मिक अत्याचार के हथियार के रूप में करते हैं और ऐसा हमेशा से करते आये हैं। वे इसके द्वारा श्रमिकवर्ग का दमन कर उन्हें अपने वश में रखकर समाज में अपना उच्च स्थान सुरक्षित बनाये रखते हैं।"[22]

अफनासेइव का यह कथन दर्शाता है कि यह धर्म के सदुपयोग की अपेक्षा दुरुपयोग है जो धर्म को विकृतकर इसे लोगों के लिए अफीम बनता है। इसमें संदेह नहीं कि संसार के प्रायः सभी देशों में तथा विशेषकर यूरोप में सामंतशाहों एवं राजाओं द्वारा तथा बाद में बड़े-बड़े उद्योगपतियों एवं पूंजीपतियों द्वारा धर्म का दुरुपयोग निर्धन लोगों के शोषण के रूप में किया जाता रहा है। ये सत्ता के व्यापारी चर्च को इस बात के लिए राजी कर लेते थे कि वे निर्धन लोगों में प्रचार करें कि उन्हें धर्म एवं परमेश्वर के नाम पर समस्त अत्याचार को सहन कर लेना चाहिए। उन्हें विनीतभाव से सामंतशाहों एवं राजाओं की अधीनता स्वीकार कर लेनी चाहिए क्योंकि वे ईश्वर प्रदत्त अधिकार के शासक हैं। इस प्रकार करने से मृत्यु के बाद वे स्वर्ग जायेंगे, आदि-आदि।

धर्म की आड़ में अत्यंत अधार्मिक एवं आध्यात्मिक रूप से दिवालिये लोग निर्दोष एवं निर्धन जनता की आध्यात्मिक भावनाओं का शोषण अपने स्वार्थ की पूर्त्ति के लिए करते थे। इन्हीं कारणों से मार्क्स को घोषणा करनी पड़ी कि धर्म लोगों के लिए अफीम के समान है। स्वामी अखिलानन्द ने "आधुनिक समस्याएं एवं धर्म (MODERN PROBLEMS AND RELIGION) नामक अपनी पुस्तक में अत्यंत संगत ढंग से इस तथ्य को उजागर किया

है। वे लिखते हैं—"धर्म सर्वप्रथम सामंतशाहों, राजाओं एवं बादशाहों के हाथ का औजार बना, फिर बड़े-बड़े उद्योगपतियों का। आर्थिक रूप से सशक्त लोगों निर्धन लोगों का शोषण करने के लिए अपने को धर्म से संबंधित कर लिया।…………वे चर्च एवं धर्म संघों के समर्थक एवं पोषक थे। उस समय धर्म संगठन न केवल शोषक वर्ग का सहयोग करते थे; बल्कि वे वस्तुतः उनके कट्टर समर्थक बन गये थे। वे बिचौलिये की भूमिका करते हुए लोगों से कहते थे कि— इस तरह का दुःखपूर्ण जीवन ही उनके भाग्य में बदा था। परमेश्वर ने उन्हें ऐसा ही बनाया है और उन्हें इस अवस्था को यथावत् स्वीकार कर लेना चाहिए ताकि मृत्योपरान्त वे स्वर्गलाभ के अधिकारी बन सकें। वस्तुतः वे ईसा के उपदेशों का उपयोग लोगों को संतुष्ट करने के लिए करते थे। इन्हीं कारणों से मार्क्सवादी कहते हैं कि धर्म अफीम के समान है।"[23]

यह एक जानी हुई बात है कि धर्म की वेशभूषा में अथवा किसी धर्मसंघ के उच्चपदस्थ व्यक्ति भी अधार्मिक यहाँ तक कि अनैतिक हो सकते हैं। ऐसे लोग जो धर्म का उपयोग उत्तोलक की तरह निर्दोष एवं निर्धन लोगों के शोषण के रूप में करते थे, किसी भी अर्थ में धार्मिक नहीं कहे जा सकते। सच्चे धर्म को शोषण एवं उत्पीड़न से कुछ लेना देना नहीं है। अतः यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि धर्म ही सभी प्रकार की बुराइयों के लिए उत्तरदायी था।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार—"धर्म मनुष्य में पहले से ही अन्तर्निहित ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति है।" स्वार्थत्याग ही ईश्वरत्व के प्राण हैं और धर्म है इसकी अभिव्यक्ति। अतएव सच्चे धर्म का शोषण के साथ कभी मेल नहीं हो सकता। झूठा धर्म किसी भी वस्तु के साथ मेल कर सकता है। किन्तु वह धर्म की जिम्मेदारी नहीं है। सच्चे धार्मिक व्यक्ति दूसरों के लिए जीते हैं। कैसे इस तरह एक महान एवं उदात्त आकांक्षा — जैसा कि धर्म का हम अर्थ लगाते हैं, लोगों की अफीम बन सकती है? इसके विपरीत धर्म महान सक्रियता एवं प्रेरणा का स्रोत है। डा० राधाकृष्णन् लिखते हैं—'धर्म एक गत्यात्मक प्रणाली है, असाधारण व्यक्ति के माध्यम से सर्जनात्मक अन्तःप्रेरणा का नवीकृत प्रयास है, जो मानवजाति को एक नूतन स्तर पर उठाने की चेष्टा करता है।"[24]

अफीम का कार्य है अपने उपभोक्ता को सुस्त एवं निष्क्रिय बना देना। इसी तरह कोई विचार अथवा आदर्श जो अपने अनुयायी को निष्प्रभ एवं निष्क्रिय बना दे, उसकी तुलना अफीम से की जा सकती है। क्या धर्म ने अपने अनुयायियों को निष्क्रिय एवं निष्प्रभ बनाया है? एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति कभी भी निष्क्रिय एवं निष्प्रभ नहीं हो सकता। निष्क्रियता जड़ता है; धर्म का प्रथम पाठ ही है जड़ता अर्थात् तमस पर विजय प्राप्त करना एवं सक्रिय होना। धर्म कहता है: जाओ एवं निस्वार्थ भाव से अपने आस-पास के लोगों की सेवा करो। आधुनिक भारत के धर्म जगत् के श्रेष्ठ एवं तेजस्वी पुरुष स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक शिष्य को लिखा था: "मैं उस भगवान् या धर्म में विश्वास नहीं करता जो न विधवाओं के आँसू पोंछ सकता है और न अनाथों के क्रंदन को रोक सकता है।"[25]

अपने आस-पास के लोगों के दुःख को कम करने का हमारा सर्वोत्तम प्रयास ही वास्तविक धर्म है। धर्मभाव मनुष्य को समस्त स्वार्थपरता को त्याग कर अपने जीवन को अखिल विश्व की सेवा में समर्पित करने को प्रेरणा प्रदान करता है। इस बात को व्यक्त करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने तत्कालीन मैसूर नरेश को एक पत्र में लिखा था—"महामना राजन्, यह जीवन क्षणस्थायी है, संसार के भोग-विलास की सामग्रियाँ भी क्षणभंगुर हैं। वे ही यथार्थ

में जीवित हैं, जो दूसरों के लिए जीवन धारणा करते हैं। बाकी लोगों का जोना तो मरने ही के बराबर हैं।[26]

अपने जीवन को दूसरों के कल्याण के लिए समर्पित कर देना, सभी प्रकार के समाज कल्याण के कार्य की रीढ़ है। धर्म मनुष्य के हृदय में इस प्रकार की भावना को भर देता है। तो फिर, किस तरह मानव हृदय की यह उच्चतम भावना लोगों की अफीम बन सकती है?

धर्म लोगों की अफीम होने की बजाय व्यक्तियों एवं जनसमूह को सभी लोगों की भलाई के कार्य करने की प्रेरणा देता है। भारतवर्ष का इतिहास इस बात को दिवालोक की तरह सुस्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है। इस भव्य एवं उत्कृष्ट भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माता आर्यजाति के महान् धार्मिक एवं आध्यात्मिक महापुरुषगण थे। स्वामी विवेकानन्द का कथन है—"धर्म भारतवर्ष की रीढ़ है।" यदि हम भारत के प्राचीन इतिहास के पन्नों से श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर, सम्राट अशोक एवं हर्षवर्द्धन के नाम, मध्ययुग के इतिहास के पन्नों से गुरुनानक, कबीर, रामानन्द, दादू, तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु, तुकाराम, रामदास एवं अन्य कई संतों के नाम तथा आधुनिक भारत के इतिहास के पन्नों से राजा राममोहन राय, श्रीरामकृष्ण, केशवचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, तिलक, मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी, श्रीरमण महर्षि एवं श्री अरविन्द के नाम हटा दें तो भारत के इतिहास में क्या शेष बचेगा? भारत का इतिहास मानव के धार्मिक विकास एवं आध्यात्मिक प्रस्फुटन का इतिहास है। भारतीय समाज एवं संस्कृति की इमारत धर्म एवं अध्यात्म की आधारशिला पर निर्मित है। प्राचीनकाल से लेकर अबतक भारत भूमि पर हुए समस्त महापरिवर्त्तनों की जड़ में धर्म प्रमुख कारण रहा है। आधुनिक समय में स्वामी विवेकानन्द के आह्वान ने भारत को गंभीर निद्रा से जगाया एवं उनके देहत्याग के पचास वर्ष बीते भी नहीं कि भारत ने अपनी राजनीतिक दासता की बेड़ी को तोड़ फेंका। वह कौन सी महान् शक्ति थी जिसने मृतप्राय राष्ट्र को जाग्रत किया एवं मौत से जूझते हुए भी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए आवश्यक मनोबल प्रदान किया? धर्म थी वह शक्ति जिसने भारत को यह विलक्षण बल प्रदान किया।

तो हम कैसे कह सकते हैं कि धर्म लोगों के लिए अफीम के समान है? यदि मार्क्स एवं एंजिल्स ने उस धर्म को जाना होता जिसके अनुसार—एकमात्र पाप है दूसरों को पीड़ा पहुँचना एवं समस्त सदगुणों का सार है दूसरों की सेवा करना (परोपकाराय पुण्याय पापाय पर पीडनम्), यदि उन्होंने उस धर्म को जाना होता, जो सभी लोगों को प्रबोधित करते हुए कहता है कि स्वयं के जीवन की चिंता न करते हुए, प्राण रक्षा के निमित्त तुम्हारे पास जो अंतिम ग्रास भोजन बचा है, उसे भी दूसरों की जीवन—रक्षा के लिए त्याग दो, तो वे ऐसा निष्कर्ष कदापि नहीं निकालते कि धर्म लोगों के लिए अफीम के समान है।

अब समय आ गया है जब मार्क्सवादी बंधुओं सहित हम सभी एक साथ विचार करें तथा उस आदर्श को ढूंढ़ निकालें जिसके सहारे मानव-समाज का पुनर्निर्माण हो सके। क्योंकि इस कठिनकाल में समस्त मानवजाति आत्मविनाश के कगार पर खड़ी है। मानवजाति का अनुभव बताता है कि विशुद्ध आध्यात्मिक आदर्श एकमात्र आदर्श है जिसके परितः सदभावपूर्ण ढंग से संपूर्ण मानवसमाज का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। पित्रिम ए० सोरोकिन स्वामी अखिलानन्द की 'आधुनिक समस्याएं एवं धर्म' (Modern problems and Religion) नामक पुस्तक का अनुमोदन करते हुए उसकी भूमिका में लिखते हैं:

"यह पुस्तक सरल एवं स्पष्ट रूप से इस तथ्य का प्रतिपादन करती है कि उस परम सत्ता, जिसे साधारणत: ईश्वर कहकर पुकारा जाता है की खोज एवं अनुभूति किये बिना न मानवजाति के जीवन पर घिरे वर्तमान युगव्यापी संकट से त्राण पाया जा सकता है, न समाज की वर्तमानकालीन भौतिक समस्याओं का हितकारी समाधान निकाला जा सकता, न विनाशकारी उद्देश्यों के लिए विज्ञान के दुरुपयोग को रोका जा सकता, न मानवीय व्यक्तित्व का एकीकरण, मानसिक शांति एवं प्रसन्नता की प्राप्ति हो सकती और नहीं व्यक्ति के लिए यथार्थ शिक्षा संपादन का कार्य हो सकता है। संक्षेप में इस मानव संसार में किसी भी प्रकार की रचनात्मक, स्वतंत्र, न्यायपूर्ण एवं सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था की स्थापना एवं अनुरक्षण नहीं किया जा सकता।"[27]

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म लोगों के लिए अफीम के समान नहीं है, वरन विगत युगों की भाँति इस युग की भी समस्त व्याधियों के लिए रामवाण के समान है।

---

16. Maxist Philosophy OP. Cit. P. 21.
17. The Concept of Man, Edited by Dr. S. Radhakrishnan and PT. Raju George Allen & Unwin London 2nd Edition P—478.
18. Religion & Society, O P, Cit, P. 78.
19. Complete works of Swami Vivekananda, Vol III, 1973 P. 125.
20. Human Destiny Lecomte Du Nowy—Longmans Green and Co. New-York 9th Printing P. 179.
21. Marx Engles Marxism, OP. Cit. PP. 230-1.
22. Marxist Philosophy, V.G. Afianasyev, Progress Publishers, Moscow PP. 382-3
23. Modern Problems and Religion, Swami Akhilananda, Baranden Press, Boston, PP. 120-1.
24. Religion and Society OP. Cit. P. 78.
25. Complete Works of Swami Vivekananda Vol V, 10th Edition P. 50.
26. Letters of Swami Vivekananda 1976 P. 119.
27. From Introduction to Modern Problems and Religion, Swami Akhilananda, Baranden Press, Boston, 1961 P. 9.

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

नित्य स्मरण के यज्ञ में सिद्धि पाने के लिए उन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ा था। अनाहार नहीं तो अल्पाहार और अनिद्रा नहीं तो थोड़ी नींद के द्वारा बहुत दिनों तक उन्होंने कठोर तपस्या किस प्रकार की थी, इस विषय में एक भक्त ने एक दिन लाटू महाराज से पूछा था। नीचे हम वही वार्तालाप उद्धृत करते हैं—

भक्त—महाराज ! साधु संन्यासी गण कामिनी-कांचन की आसक्ति त्याग करने को कहते हैं, पर बताइए हमारे जैसे गृहस्थ भला उस आसक्ति को कैसे त्याग सकते हैं ? हमारा मन तो आसक्तियों में जकड़ा हुआ है। उनके साथ युद्ध कर पाने का कोई उपाय नहीं है। युद्ध भी कैसे हो सकता है ? जिन हथियारों से युद्ध करने जाऊँगा, आसक्तियाँ उन्हें मन के भीतर पैर ही नहीं जमाने देंगी। आप नाम जपने को कहते हैं, परन्तु आसक्तियों के खिचाव से नाम लेने की इच्छा ही नहीं होती। आप विचार करने को कहते हैं पर वहाँ भी देखता हूँ कि आसक्तियाँ विचार को दबाकर मन के भीतर किलबिलाती रहती हैं। अब आप हमें बताइए कि आप लोगों ने किस उपाय से आसक्तियों के बीच नाम और विचार के लिए जगह बनायी थी ?

उन भक्त के इस प्रश्न के उत्तर में लाटू महाराज ने जो कुछ कहा था, वह एक तरह से उनकी अपनी साधना की ओर इंगित करता है।

लाटू महाराज—तुम लोगों की तो बस वही एक रट है—नाम कैसे करूँ ? अरे, नाम लेते लेते नाम स्वयं ही मन के भीतर घर बना लेता है, समझे? मन तो आसक्ति के नशे में दौड़ रहा है। आसक्तियाँ ही तो मन की नाक में नकेल डालकर उसे घुमा रही हैं। उनके समान दुष्ट भला और कौन है ? यही बात तो अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कही थी। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से सहमत हुए कि मन बड़ा पाजी है और बोले—'हे अर्जुन ! आसक्तियों के प्रति वैराग्यवान बनो और नित्य अभ्यास करते रहो।' अभ्यास करते करते मन स्थिर हो जायगा। मन जितना ही विषयों की तरफ दौड़े, उतना ही तुम मन के भीतर विचार करते रहना। अरे, विषय आदि तो सब अनित्य हैं—आज हैं, कल नहीं। अनित्य चीजों की जितनी आवश्यकता पड़े, उतना ही लेकर तुम सन्तुष्ट रहो। उससे ज्यादा क्यों लोगे ? अनित्य का अधिक बोझ बढ़ाने से वहाँ नित्य वस्तु के लिए जगह न रह जायगी। अनित्य वस्तुएँ जोड़-जोड़कर तो नित्य वस्तुओं की सृष्टि नहीं हो सकती। नित्य वस्तु तो एक वही ब्रह्मवस्तु है। ब्रह्म को छोड़ बाकी सब अवस्तु समझना। इस प्रकार मन को बुझाना। बुझाते बुझाते देखोगे कि विवेक जाग उठा है। जानते हो न, राम ने सभा के बीच हनुमान को मुक्ता की माला दी थी। परन्तु हनुमानजी ने माले को हिलाडुला कर देखा, एक दाने को दाँत से काटकर भी देखा, पर ज्योंहीं देखा कि उसमें

राम का नाम नहीं लिखा है, उसे तुरन्त फेंक डाला। यह देखकर लक्ष्मण नाराज हो गये और बोले, 'बन्दर है न, मुक्ता की माला का मर्म भला क्या जाने ! इतनी सुन्दर माला को दाँत से काट कर बरबाद कर दिया।' लक्ष्मण का दुःख देखकर रामजी बोले, 'उससे पूछो कि उसने ऐसा क्यों किया ?' हनुमानजी को पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया, 'देख रहा था कि इसके भीतर रामनाम है या नहीं।' समझे न ! इसी प्रकार विचार करना चाहिए। विचार को जाग्रत रखना ही तो सबसे बड़ी तपस्या है। जो विचार करना जानता है वह कामनाओं के साथ हर घड़ी लड़ाई करता रहता है। अरे, विचार और विवेक को जगा डालो तभी तो कामनाओं के साथ लड़ सकोगे। सदसत् बुद्धि पैदा हुए बिना कामनाओं को रोकोगे भी तो कैसे ? बाहर की खिड़की से जो गर्द मन के कमरे में आ रही है पहले उसी को साफ करो; विचार करके खिड़की (अर्थात इन्द्रियों) के सामने 'प्रवेश निषेध' की नोटिस टाँग दो। उस नोटिस को भी न मानकर जो गर्द भीतर घुस जाएगी, उन सबको पुलिस (अर्थात विवेक) के हाथ में दे देना। विवेक पुलिस की सहायता से मन के साथ मन को लड़ाते रहना। तभी तो मन को जगह खाली होगी और तब उस जगह पर भगवान को बैठा सकोगे। भगवान को न बैठाने तक कामनाओं पर विजय नहीं पा सकोगे। जानते हो न—'मन में हो कामना का बीज है, भीतर की इन्द्रियाँ और बाहर के विषय उस बीज को रस दे रहे हैं। बीज के ऊपर रस पड़कर भरपूर फसल हो रही है। उस फसल को काटना होगा और बीजों को नष्ट कर देना होगा। उसके बाद उसी जगह पर भगवान के नाम का बीज बिखेर देना होगा। तभी तो नाम की फसल पैदा होगी। इस समय उसमें काम की फसल हो रही है। इसीलिए वे कहते थे—'जहाँ काम, तहाँ राम नहीं; और जहाँ राम वहाँ काम नहीं।'

भक्त—महाराज ! थोड़ी शंका है। क्या आप पहले इन्द्रियों को रुद्ध करके फिर नाम करने को कह रहे हैं ?

लाटू महाराज - वह भी हो सकता है। परन्तु नाम में एक ऐसी शक्ति है, जो काम के बीज को दग्ध कर दे सकती है। वे कहा करते थे न - 'नाम का कवच पहन कर काम के आक्रमण को रोक देना।'

भक्त—महाराज ! नाम किस प्रकार काम पर विजय पा सकता है ?

लाटू महाराज—अरे, नाम के सामने काम टिक नहीं सकता। नाम में एक ऐसी आकर्षण-शक्ति है कि मन के एक बार उस आकर्षण में पड़ जाने से फिर काम को जागने का मौका ही नहीं मिलता। नाम ही सत्य वस्तु—असल वस्तु है। जहाँ पर सत्यवस्तु का ध्यान चलता रहता है वहाँ असत् भला कैसे घर बना सकता है ?

भक्त—यह सब हो सकता है जाग्रत अवस्था में सम्भव हो। परन्तु मनुष्य जब सोया रहता है तो भी उस पर काम का आक्रमण चलता ही रहता है; ऐसी हालत में मनुष्य उस आक्रमण से कैसे बच सकता है ? स्वप्न और निद्रा की अवस्था में मन भला आसक्तियों के हाथ से कैसे बच सकता है ?

लाटू महाराज—नाम उस आक्रमण से भी मन को बचाकर रख सकता है। सच कहता हूँ, यदि ठीक ठीक नाम ले सको तो नाम की शक्ति नींद में भी काम करती रहेगी। जो नाम लेना जानता है, वह जाग्रत और सुषुप्ति सभी अवस्थाओं में नाम लेता रहता है। जिस प्रकार निद्रा के समय देह का श्वास-प्रश्वास का कार्य चलता रहता है,

उसी प्रकार मन के भीतर नाम का कार्य भी चलता रहता है। वह मन में स्वप्न को नहीं आने देता और यदि स्वप्न उठे भी तो नाम ही साधक को नींद से उठाकर उसकी रक्षा करता है। इसी प्रकार नाम की शक्ति साधक को रातदिन बचाती रहती है।

जिन भक्त के साथ ये बातें हो रही थीं उन्होंने अपने नोट में एक जगह लिखा है (विस्तार के भय से हम वह पूरा वार्तालाप यहाँ उद्धृत नहीं कर रहे हैं)—

"लाटू महाराज—इतनी सहज सी बात का भी अर्थ नहीं समझ पाते हो। अरे मन के भीतर कामनाओं ने तो सदा से ही घर बना रखा है। कभी कभी तो वे मन के सामने उतराती रहती हैं और कभी ऐसे डूबी रहती हैं कि ऐसा लगता है कि पता नहीं उन कामनाओं का अस्तित्व भी है या नहीं। जितना ही उनकी (भगवान) ओर बढ़ते जाओगे, उतना ही सब कामनाओं की गाँठ देख सकोगे। देह मन जितना ही शुद्ध पवित्र होने लगेगा, उतना ही भीतर का गर्द—हजारों जन्मों के संस्कार जो छिपे हुए थे, वे सब बाहर निकल आएंगे। बाहर निकल कर नाम के साथ जूझते रहेंगे। जिस नाम के ताप से वे बाहर निकल आते हैं, उसी नाम के ताप से वे मन का किला छोड़कर भाग जाने को भी बाध्य होते हैं। नाम की शक्ति के सामने वे भला कैसे टिक सकते हैं?"

एक अन्य स्थान पर उन्होंने लिखा है — 'देखो, वासनाएँ सब बड़ी चालाक हैं, वे सिर्फ मन पर ही नहीं बल्कि मन के हथियारों पर भी कब्जा जमा लेती हैं (मन के हथियार है—पंच कर्मेन्द्रिय और पंच ज्ञानेन्द्रिय)। इसीलिए मन में कामना का उदय होते ही इन्द्रियाँ चंचल होकर अपने अपने विषयों की खोज में भटकती रहती हैं। आँखें देखना चाहती हैं, कान सुनना चाहते हैं, जीभ चखना चाहती है, बोलना चाहती है, नासिका सूँघना चाहती है और देह त्वचा का स्पर्श चाहती है। हाथ भी इसके लिए कार्य करना चाहता है, पाँव भी जहाँ वह (विषय) मिले वहीं ले जाना चाहता है। और बाकी सब इन्द्रियाँ भी सजग रहती हैं। सुयोग मिलते ही वे थोड़ा सा मजा ले लेती हैं। और मन क्या करता रहता है जानते हो? उन्हीं को लेकर कल्पना के घोड़े दौड़ाता रहता है। यह कल्पना ही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। वही तो मनुष्य के मन को लोभ दिखाता है, वही समझता है कि विषयों में बड़ा सुख है। और उसी सुख के लोभ में मनुष्य अपनी सारी विवेक बुद्धि खो बैठता है। देखो तो, इसी कल्पना के लिए मनुष्य कैसे विषयों की ओर अग्रसर होता रहता है। इसीलिए तो कहता हूँ कि कामनाओं को रोकना चाहते हो तो कल्पना को बन्द करो।

भक्त—महाराज! कल्पना को कैसे बन्द किया जा सकता है?

लाटू महाराज—देखो, मन के साथ विषयों का योग बन्द कर देने से ही कल्पना को रोका जा सकता है, परन्तु उसे निस्तरंग नहीं कर सकोगे। कोई एक विषय समझने के लिए कितनी चीजों की जरूरत होती है, जानते हो? वे कहते थे— 'तीन चीजों की जरूरत होती है— विषय वस्तु की, इन्द्रिय की और मन की।' इन तीनों में से एक को भी निकाल देने से विषय का ज्ञान नहीं होता। अतः इन तीनों में से किसी एक को भी रोक देने से मन की कल्पना बन्द हो जाती है। विषय वस्तु को रोकना बड़ा कठिन है। वह तो आती जाती ही रहती है, हर समय उसके साथ संयोग होता ही रहता है, उससे बचकर भागने से कोई लाभ नहीं। जानते हो क्यों? जब तक तुम उससे दूर रहोगे, तब तक तुम्हारा संयम ठीक रहेगा, परन्तु

ज्योंहीं वह सामने आ पड़ेगी त्योंहीं तुम उसकी माया में भूल जाओगे। इसीलिए तुम लोगों से कहता हूँ कि इन्द्रिय या मन इन दोनों में से किसी एक की दिशा फिरा दो। यदि तुम इन मेंसे एक को भी अवरुद्ध कर सको, तो विषय के साथ तुम्हारा योग नहीं हो सकता। तब सब रहेगा परन्तु जैसे तुम्हारे घर में जेठ और भाइयों की बहुओं के बीच सम्बन्ध रहता है, वैसे ही रहेगा। भाई की बहू जैसे जेठ की सेवा करती है, उनकी जरूरत की सारी चीजें सम्भाल कर रखती है, परन्तु जेठ के साथ सर्वदा एक परदा बनाए रखती है; उसी प्रकार मन और विषयों के बीच एक परदा लगा कर तुम लोग चलते रहो। वहाँ पर एक मात्र विचार ही परदे का काम दे सकता है। परन्तु विचार क्या लेकर करोगे? उन्हें पकड़ कर ही विचार करना चाहिए! उनके बिना विचार बड़ा शुष्क हो जाता है, अतः केवल विचार लेकर नहीं चलना चाहिए।

उसी वार्तालाप में एक अन्य स्थान पर उन भक्त ने लिखा है—लाटू महाराज कहते हैं—

"एकमात्र नाम की शक्ति से ही मन का धर्म पलट जाता है, मन का संकल्प-विकल्प सब बन्द हो जाता है। उसके बाद कल्पना करने वाला कोई बचता ही नहीं। अरे! मन कहाँ रहता है यह तो कोई जानता नहीं। संकल्प-विकल्प की तरंगों से पता चलता है कि मन का कार्य चल रहा है। मन में तरंग नहीं रहती तभी मन शुद्ध होता है। इस पवित्र मन में भगवान की शक्ति संचारित होती रहती है। तब वस्तु को पहचाना जाता है।"

उन्हीं भक्त के द्वारा लिखित नोट से एक और अंश उद्धृत करता हूँ। यह भी लाटू महाराज की उक्ति है—"वे (ठाकुर) कहा करते थे, 'जीव रूपी कागज पर काम-कांचन रूपी तेल लग जाने पर उससे साधना नहीं होती। उस पर त्याग-वैराग्य की खड़िया चलाकर ही उसे साधना करनी होगी।' अरे! त्याग-वैराग्य क्या हँसी-खेल है! मन को कितना समझाना पड़ता है, सिखाना पड़ता है, कितना नाम जप का घेरा देकर रखना पड़ता है। नाम जप का घेरा लगाये बिना मन भला नाम में कैसे बैठेगा? दिन भर तो विषय लेकर मस्त रहते हो और दस-पन्द्रह मिनट या घण्टे भर उनका नाम लेते हो। ऐसा करने से तो काम नहीं होगा। दिन भर उनके नाम में मस्त रहो और एक या दो घण्टे विषय के काम-काज करो। तब देखोगे कि विषय सब तुम्हारे मन को आकृष्ट नहीं कर पा रहे हैं। पर तुम लोग तो कहोगे कि इतना समय कैसे दे सकते हैं?"

(क्रमशः)

कहानी

बाल बीर

श्री अशोक कुमार पाण्डेय
बक्सर (बिहार)

सिमुलिया मुहल्ले के प्रतिष्ठित दत्त घराने की एक महिला अपने छः वर्षीय बालक को कलकत्ते से थोड़ी दूरी पर लगने वाले मेले में जाने के लिए तैयार कर रही थीं। माँ ने बच्चे को साफ सुन्दर वस्त्र पहना दिया था। अब वे उसके बाल बार-बार संवार रही थीं। और बालक बार-बार बाल बिखरा देता। बाहर पड़ोस के कुछ बच्चे, युवक और वृद्ध उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अंत में माँ ने झुंझला कर कंघा पटकते हुए कहा—'शैतान कहीं का, अब जा, जैसी तेरी मर्जी वैसी तू कर। भला शंकर के भूत को कोई कब तक सजाए?' तत्क्षण बालक शिव के समान पद्मासन लगा कर बैठ गया और बोला—मैं भूत नहीं, दूत हूँ दूत —शिव का दूत।" माँ का क्रोध बालक की इस मुद्रा पर कपूर की तरह उड़ गया। वे बोलीं अच्छा-अच्छा जा तो बहुत बना है दूत।' किन्तु मन ही मन माता को आनन्द हुआ। क्यों? इसका सुनिश्चित उत्तर उनके पास भी नहीं था।

बालक अपने साथियों के साथ मेला देखने चला गया। किन्तु न जाने क्यों उस दिन माँ के हृदय में क्षणमात्र के लिए ही सही भय उत्पन्न तो हो ही गया था। वे सोचने लगीं—"मैंने बिले को घर के किसी आदमी के साथ क्यों नहीं भेजा? यदि मेले में उसे कुछ हो गया तो ......।" किन्तु तत्क्षण उन्होंने इस आशंका को हृदय से निकाल दिया और सोचने लगीं—"अरे नहीं, मेरे बेटे को कुछ नहीं होगा, वह तो शिव का प्रसाद है, शिव उसकी रक्षा करेंगे।

उधर घूमते घामते बालक अपने संगी साथियों और मुहल्ले के बुजुर्गों के साथ मेले में पहुँच गया। सभी लोग इधर-ऊधर घूम कर मेले का आनन्द ले रहे थे। बालक भी थोड़ी देर तक दोस्तों के साथ घूमता रहा। दोस्तों में से कोई झूला झूल रहा था तो कोई मिठाइयों की दूकान पर मिठाइयाँ खा रहा था। किंतु सबके साथ होने पर भी वह सबसे अलग लगता था। उसकी आँखें मेले के जनसंकुल कलरव को भेद कुछ टटोलती सी प्रतीत हो रहीं थीं मानों वे मेले का अन्त्यपरीक्षण कर रही हों। उसके बाल-आनन पर चिन्तन के मेघों का राशिभूत अट्टहास देख पड़ोस के वृद्ध रामू दादा ने पूछ ही तो दिया—"क्यों बिले, क्या सोच रहे हो?" "कुछ नहीं ऐसे ही"......कहकर बालक शान्त हो गया।

तब तक दूसरी ओर से नीचे घुटनों तक धोती पहने ऊपर नंगे बदन, श्यामल सुगठित पुष्ट शरीर का एक संथाल नवयुवक सिर पर मूर्तियों की टोकरी लिए दूर गाँव की ओर से आता दिखा। उसे देखते ही बिले के मुख से हर्षपगे बोल फूट पड़े—"पा गया, पा गया।" पास खड़े रामू दा ने पूछा, "क्या पा गया रे बिले?" "मूर्तियों वाले को" बिले ने कहा।" तो क्या तब से तू मूर्तियों वाले के लिए ही चिन्तित था?" रामू दा ने जिज्ञासा प्रकट की। 'हाँ' बिले ने संक्षिप्त उत्तर

दिया। "अच्छा, तो यह बात थी" रामू दा ने कहा। तब तक बिले के तीन-चार मित्र भी वहाँ इकट्ठे हो गये। उनलोगों के सहयोग से मूर्तियों की टोकरी उतारी गयी। रामू दा को मूर्तियों से कुछ लेना देना तो था नहीं। वे दूसरी ओर जहाँ बाउलों के नृत्य गीत हो रहे थे, चले गये। उसके साथियों ने अपनी-अपनी पसंद की मूर्तियाँ खरीद लीं। किन्तु बिले शीघ्र कोई मूर्त्ति ही नहीं पसंद कर पा रहा था। बहुत देर बाद बिले को भस्माच्छादित, समाधिस्थ शिव की एक सुन्दर मूर्त्ति पसन्द आयी। और उसे ही उसने खरीदा भी। ब्रह्म से मिलने के बाद जैसे योगी की चित्तवृत्तियाँ शांत हो जाती हैं, वैसे ही शिवमूर्त्ति को लेने के बाद बिले का हृदय भी शान्त हो गया। अब वह अपने साथियों के साथ मेला देखने में पूरी तरह रम गया। इससे पूर्व ऐसा प्रतीत होता था मानो वह मेले में रहकर भी मेले में न हो। उसका प्रशांत मुखमण्डल उस साधक की मनःस्थिति का प्रतिविम्वन कर रहा था जो लक्ष्य प्राप्ति के पहले उद्विग्न मनः स्थितियों के मंथन को मन प्राणों में महसूसता है, किन्तु वांछित लक्ष्य तक पहुँच जाने के बाद शांत, स्थिर हो जाता है। अब वह मेले का हर दूकान पर निर्द्वन्द्व जा रहा था। उसने मुक्तमन से मेले का आनन्द लिया।

तब तक शाम हो आयी थी। मेले के एक किनारे पर पश्चिम के लोगों का सामूहिक गाना—बजाना भी चल रहा था। ढोल, मजीरे, झाँझ और गवैयों की सधी लयबद्ध आवाज सांझ की वेला में दूर किसी मन्दिर में प्रार्थना के स्वर सी प्राणों में शान्ति का संचार कर रही थी। उसे सुनकर स्वतः ही बालक के मन में आनन्द का अनहद नाद बजने लगा। वह निश्चल प्रस्तर मूर्त्ति सा खड़ा हो गया। साथ वाले लड़कों की दृष्टि उस पर पड़ी तो उनलोगों ने साश्चर्य पूछा—"अब क्या हुआ रे बिले!" बिले ने अन्तर्निहित भावों को व्यक्त न करते हुए कहा—"कुछ नहीं, चलो अब घर चलें, माँ चिन्तित हो रही होगी।"

दिनभर का छोटा मेला था। संध्या वेला के आगमन के साथ ही मेले के सिमटने की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हो गयी। आस पास के गाँवों से आये छोटे मोटे दूकानदार अपनी दूकाने समेटने लगे। झूले वाला झूले के खम्भों को हिला हिलकर ढीला कर रहा था तो चर्खी वाला चर्खी के खम्भे को खोद कर उखाड़ने की तैयारी कर रहा था। तम्बू कनात वालों ने अपने तम्बू समेट लिये। मिठाइयों वाले और तमोलियों ने अपनी दूकाने बढ़ा लीं। भीड़ बिखर रही थी। चहल पहल घट रही थी और शान्ति बढ़ती जा रही थी। सूर्य का लाल गोला पश्चिमी क्षितिज के विशाल वक्षस्थल में शनैः शनैः सिमटता जा रहा था मानो कोई शिशु रात होती देख माँ के आँचल में दुबक जाना चाहता हो। सूर्य की रक्ताभ रश्मियों से चर्चित बदराए आकाश के धुँधलाए पट पर अपने घोसलों में लौटने की व्यग्रता से विचरते हुए विहग किसी अतिमानवीय प्रतिभासम्पन्न रंगकर्मी के करिश्मे का आभास दिला रहे थे।

सबको अपने अपने घर लौटने की पड़ी थी। मानो संसार व्यापार से थकित मन माया के व्यूह से बाहर निकल प्रभु के चरणों में शरण ग्रहण करने को व्यग्र हो। बिले अपने मित्रों के साथ शीघ्रता से किन्तु स्थिर डग भरता हुआ घर लौट रहा था। मेले की सीमा समाप्त हो गयी थी किंतु अभी कलकत्ता नहीं आया था। दूर तक फैले मैदान में वृक्षों के नाम पर कहीं-कहीं ताड़ के वृक्ष समूह, आम और कटहल के बाग और बेर के झाड़नुमा छोटे-छोटे वृक्ष दिख जाते। उस विस्तृत मैदान के बाद एक रेलवे क्रासिंग था और उसके बाद ही कलकत्ता आ जाता। रेलवे क्रासिंग पार

करने के बाद मेले से लौटते लोगों का दल कलकत्ते की सीमा में प्रविष्ट हुआ।

अब सड़क आ गयी थी। सड़क के दोनों ओर पटरियां बनी हुई थीं जिनपर लोग आ जा रहे थे। सड़क पर घोड़े-गाड़ियाँ और घोडों से खिचे जाने वाली ट्राम गाड़ियाँ आ जा रही थीं। उस समय को ट्राम गाड़ियाँ यानी घोडा गाड़ी का अपेक्षाकृत परिष्कृत रूप। एक बोगी रहती थी जिसे घोड़े खींचते थे। इन्हीं पटरियों में से एक पर बालक बिले अपनी प्राणप्रिय शिवमूर्ति को वक्षस्थल से चिपकाए चल रहा था। सड़क के दोनों किनारों पर लगी गॅस बत्तियाँ हीं नहीं अपितु अट्टालिकाओं में भी बत्तियाँ जल गयी थीं। अचानक किसी के तेज चीत्कार से बिले का ध्यान भंग हुआ। अपने आप में डूबी आँखों को चीत्कार की दिशा में केन्द्रित करने पर वह सन्न रह गया। देखता क्या है— "एक तीन चार वर्ष का छोटा बालक अपने दल से बिछुड़ कर घोड़ा गाड़ी से कुचलने ही वाला है। कुछ करना चाहिए, इतना ही वह सोच पाया। इससे अधिक सोचने का समय भी कहाँ था ....। एक तरफ थे उसके प्राण प्रिय शिव और दूसरी ओर मृत्यु के मुख में जाता जीव। किन्तु निमिषमात्र में उसने मूर्त्ति के प्रति ममत्व को निर्मम होकर हटा दिया और शिवमूर्त्ति को एक ओर फेंक तडित वेग से जाकर बिले ने बच्चे को घोड़े की टापों में से उठा लिया। बेचारा कोचवान........उसने हड़बड़ा गाड़ी रोक दी। किन्तु तब तक तो बिले बच्चे को अपनी गोद में चिपकाए सड़क किनारे किसी विजयी वीर के समान दर्पदीप्त शान्त भाव से खड़ा था।

बालक की प्रत्युत्पन्नमति और अनपेक्षित वीरता को देख लोगों का हृदय गद्गद हो उठा। तब बालक ने सड़क की दूसरी पटरी पर शुष्क मुख खड़ी बालक की माँ के हाथों में बच्चे को सौंप दिया। मृत्यु के मुख से बचाने वाले बिले के प्रति कृतज्ञता शब्दों से नहीं प्रकट की जा सकती थी। शब्द चुक गये थे। मानो भावना के भवसागर में डूब गये थे। स्वत: ही उस बालक की माँ ने उसे भी खींच कर चिपका लिया मानो उसके एक नहीं दो बालकों के प्राणों की रक्षा हुई हो। उधर रात हो आयी थी और अभी तक बिले नहीं आया था। उसकी माँ कुछ चिन्तित हुईं। थोड़ी देर तक वे अपने मन को दबाये रहीं। किन्तु जब व्यग्रता बर्दाश्त के बाहर हो गयी तो वे बार-बार अपने कमरे से उठकर आँगन में आ जातीं। उनके हृदय में चिन्ताओं की आँधी चल रही थी। परिवार की महिलाओं ने भुवनेश्वरी को कभी इतना चंचल चित्त नहीं देखा था। वे धीर प्रशांत एवं गरिमामयी महिला थीं। किन्तु आज उनकी व्याकुलता को देख परिवार की एक बूढ़ी महिला ने कहा "इतना घबराती क्यों हो बहू माँ? बिले आ जायेगा, अकेले तो गया नहीं है, साथ में उसके संगी-साथी और मुहल्ले के बुजुर्ग भी तो हैं।" "हाँ वो तो है" भुवनेश्वरी बोलीं "किन्तु पता नहीं क्यों आज मैं इतनी व्यग्र हो रही हूँ।" तब तक लम्बी दुर्बल काया वाले बूढ़े रामू दा आते दिखाई पड़े। उनको देखते ही भुवनेश्वरी ने पूछा "बिले कहाँ है? रामू दा' अरे मत पूछो बहू माँ, तुम्हारा बिले बड़ा ही दुर्द्धर्ष है। आज उसने जो कर दिखाया उसे शायद कोई शूरमा ही कर पाए।" भुवनेश्वरी ने सशंकित स्वर में पूछा—"क्या! क्या किया है बिले ने?" क्योंकि वे उसकी शैतानियों से अपरिचित नहीं थीं। दादा ने आदि से अन्त तक विस्तारपूर्वक सारी घटना सुना दी। पूरी घटना सुनने के बाद उनके मन में एक अकथनीय गर्व का भाव जग उठा।

किन्तु भुवनेश्वरी कितनी भी दृढ़ हृदया क्यों न हों किन्तु थीं तो माँ ही न! पुत्र के वीरता पूर्ण कृत्य को सुन वे रोमांचित हो उठीं। किन्तु

हृदयोत्थित्त आनन्द के आवेग को संयत कर उन्होंने दादा से पूछा—"लेकिन बिले है कहाँ ?" तब तक दत्त भवन के भव्य विशाल बहिर्द्वार से आवाज आयी "मैं यहाँ हूँ माँ।" भुवनेश्वरी ने अकुलाकर सामने देखा "बिले देहरो को पार कर आँगन के बीच नीर्विकार खड़ा था, जैसे कुछ हुआ ही न हो। भुवनेश्वरी का हृदय भर आया। करीब करीब दौड़ते हुए उन्होंने बालक को अपनी गोद में चिपका लिया। बार-बार वे उसके मस्तक पर हाथ फेरतीं और ललाट पर लगे स्वेद कणों को अपने आँचल से पोंछती जातीं। आनन्द से भर आयी आंखें को टपकने से रोकते हुए उन्होंने कहा—'शाबाश बेटे, सही अर्थों में आज तुमने मनुष्य का कार्य किया है। इसी तरह सदैव पूर्ण मनुष्य की तरह जीवन भर काम करना। क्योंकि जो मनुष्य का तन पाकर भी मानवोचित गुण सम्पन्न नहीं, वह मात्र मानव देहधारी है। मनुष्य नहीं।"

भुवनेश्वरी के इन वाक्यों ने बिले के हृदय पर कैसी छाप छोडी होगी; इसका साक्षी उसका परवर्ती जीवन है। परवर्ती जीवन में वही विले विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्द हुए जिन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों में अमेरिका जाकर वहाँ धर्म महासभा में वेदान्त के सिंहनाद से विश्व को निनादित कर परतन्त्र भारत भूमि की महानता को दिगन्तव्यापी गरिमा प्रदान की थी।

●

सद्य प्रकाशित

नवीन ग्रन्थ

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहाँ जाता है ? किस अवस्था में रहता है ? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं परलोक में जीव का अवस्थान किस प्रकार रहता है ? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इस सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ "मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपर्युक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास को ही प्रतिछवि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साइज, पृष्ठ संख्या १६८ : मूल्य—बीस रुपया।

प्रकाशक :

श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ

१९-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००६

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार में
उपलब्ध
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
यौवन
दिमागी ताजगी
विकास
बलवर्द्धक
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता हैं
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

"... New India arise—out of the peasant's cottage, grasping the plough, out of the huts of the fisherman, the cobbler and the sweeper. Let her spring from the grocer's shop, from beside the oven of the fritter-seller. Let her emanate from the factory, from markets. Let her emerge from groves and forests, from hills and mountains."

—**Swami Vivekananda**

With Best Compliments From :

HINDUSTAN GAS & INDUSTRIES LTD.

"INDUSTRY HOUSE"
10, CAMAC STREET
CALCUTTA—700 017

Manufacturers of :

Oxygen in Liquid & Gaseous Forms, Nitrogen, Argon, Dissolved Acetylene, Hydrogen and Carbon Dioxide Gases, Engineers Steel Files, S.G. Malleable & Heavy Duty Iron Castings and Owners of Cold Storage at Patna City.

Telegram : 'HINDOGEN'
CALCUTTA

Telephone : 44-[illegible]9, 44-[illegible]0, 44-[illegible]9, 44-[illegible]035

Telex : [illegible]

कुछ अवश्य संग्राह्य जीवनी-ग्रन्थ

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (तीन भागों में)	—स्वामी सारदानन्द	प्रथम भाग—रु. २०.००
		द्वितीय भाग—रु. २२.००
		तृतीय भाग—रु. १७.००
श्रीरामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश	—स्वामी अपूर्वानन्द	—रु. ३.००
माँ सारदा	—स्वामी अपूर्वानन्द	—रु. १७.००
श्री सारदादेवी : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश	—स्वामी अपूर्वानन्द	—रु. ३.००
विवेकानन्द-चरित	—सत्येन्द्रनाथ मजूमदार	—रु. २०.००
स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश	—स्वामी अपूर्वानन्द	—रु. ३.००
श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका	—स्वामी गम्भीरानन्द	प्रथम भाग—रु. २८.००
स्वामी शिवानन्द	—स्वामी शिवतत्वानन्द	—रु. ६.००
स्वामी विज्ञानानन्द	—स्वामी विश्वाश्रयानन्द	. ३.००
साधु नागमहाशय	—शरच्चन्द्र चक्रवर्ती	—रु. ६.५०
आचार्य शंकर	—स्वामी अपूर्वानन्द	—रु. ९.५०

अधिक जानकारी के लिए लिखें—

रामकृष्ण मठ,
(प्रकाशन विभाग)
धन्तोली, नागपुर—440 012

मूल्य : २.५०

आनन्द डाइजेस्ट
पारिवारिक मासिक पत्रिका
बालक प्रकाशन,
पटना-800004, फोन 50341

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना ... में मुद्रित